

एम.ए.(हिंदी)

सेमेस्टर-IV

विकल्प (क) : मध्यकालीन हिंदी साहित्य
प्रश्नपत्र 4043 : उत्तर मध्यकालीन (शास्त्रीय) काव्य
अध्ययन सामग्री : इकाई 1-4



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी-विभाग

संपादक : डॉ. सुधीर कुमार शर्मा

विकल्प (क) : मध्यकालीन हिंदी साहित्य
प्रश्नपत्र 4043 : उत्तर मध्यकालीन (शास्त्रीय) काव्य
अध्ययन-सामग्री : इकाई 1-4

अनुक्रम

- इकाई-1. केशव : कविप्रिया – आचार्य केशवदास –(स्व.) डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री
- इकाई-2. कवि देव : रस विलास (आचार्य देव : एक परिचय) –डॉ. वीना
- इकाई-3. कवि पद्माकर : जगद्विनोद (आचार्य पद्माकर) –डॉ. सरला चौधरी
- इकाई-4. कवि भूषण : शिवा बावनी (संपूर्ण)
- (क) वीरकाव्य-परम्परा में भूषण का वैशिष्ट्य –(स्व.) डॉ. शुभलक्ष्मी वत्स
- (ख) भूषण का अभिव्यंजना-शिल्प –(स्व.) डॉ. शुभलक्ष्मी वत्स
- (ग) शिवा बावनी : रस-व्यंजना –डॉ. उषा कस्तूरिया
- (घ) शिवा बावनी : प्रतिपाद्य –डॉ. उषा कस्तूरिया
- (ङ) कुछ स्थलों की व्याख्या –डॉ. उषा कस्तूरिया

संपादक :

डॉ. सुधीर कुमार शर्मा



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

केशव : कविप्रिया

आचार्य केशवदास

(स्व.) डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री
एसोसिएट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय

(क) केशवदास का आचार्यत्व (कविप्रिया के संदर्भ में)

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग के पूर्ववर्ती काल के अन्तिम चरण में आचार्य केशवदास ने 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' तथा 'छन्दो-माला' नामक तीन काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे। 'रसिकप्रिया' में रस तथा नायिका-भेदादि का वर्णन किया और 'छन्दोमाला' में छन्दों का विवेचन किया। 'कविप्रिया' में काव्य के गुण-दोषादि के अतिरिक्त अलंकारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। आचार्य केशवदास का अलंकार सम्बन्धी आचार्यत्व 'कविप्रिया' में प्रकट हुआ है।

'कविप्रिया' के 16 प्रभावों में काव्य-विषय-निरूपण किया गया है। पहले प्रभाव में श्रीगणेश-वंदना से आरम्भ करके ग्रन्थ के प्रणयनकाल का उल्लेख किया गया है। अपने आश्रयदाता महाराज इन्द्रजीत के वंशवृक्ष के अतिरिक्त छः पातुरियों-रायप्रवीण, नवरंगराय, विचित्रनयना, तानतरंग, रंगराय, रंगमूर्ति का नाम दिया है। दूसरे प्रभाव में कवि-वंश का वर्णन है। तीसरे प्रभाव में काव्यदोषों का सोदाहरण निरूपण है। अंध, वधिर, पंगु, नग्न और मृतक नामक दोषों को मानव शरीर में देखकर काव्य में निहित कर दिया है। चौथे प्रभाव में कवि-भेद-वर्णन तथा कविरीति एवं सोलह शृंगार साधनों के नाम वर्णित हैं।

पाँचवें अध्याय से अलंकार-निरूपण आरम्भ किया गया है। पाँचवें अध्याय में अलंकार का काव्य में स्थान निश्चित शब्दावली में निर्धारित किया गया है। आचार्य केशवदास ने काव्य की सत्ता अलंकार-सहित ही मानी है—

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।

भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥

कविता और वनिता के अलंकृत होने के लिए श्लेषालंकार का प्रयोग किया गया है। श्लेष-प्रवीण आचार्य केशवदास ने कविता को अलंकार-विहीन होने पर नग्न माना है। इसलिए उनकी दृष्टि में अलंकार-विहीन कविता को कविता कहना उचित नहीं लगता है।

इसी अध्याय में आचार्य केशवदास ने अलंकारों के सामान्य और विशेष नाम से दो भेद किए हैं। तदनन्तर सामान्य के वर्ण, वर्ण्य, भूमिभूषण एवं राजश्री भूषण नाम से चार भेद कहे हैं। पाँचवें प्रभाव में वर्णालंकारों (श्वेत हरितादि रंग से सम्बन्धित) का विस्तार से निरूपण किया गया है। छठे में वर्णालंकारों के अन्तर्गत सम्पूर्ण, आवर्त, कुटिल, त्रिकोण, तीक्ष्ण, गुरु, कोमल, कठिन, निश्चल, चंचल, सुखद, दुखद, मंदगति, सीतल, तप्त, सुरूप, क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ठ, सत्य-झूठ, मंडल, अगति, सदागति तथा दान नाम से 28 प्रकार के अलंकार लक्षणोदाहरण में निरूपित हैं।

सातवें प्रभाव में भूमि-भूषणों का विवेचन लक्षण-लक्ष्य-सद्धति से किया गया है। भूमि-भूषण में देश (मध्यदेश) नगर (ओरछा), वन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल, रवि, शशी, सागर तथा षटऋतुओं का वर्णन किया गया है। आठवें प्रभाव में राज्यश्री भूषण निरूपित हैं। इनमें राजा, रानी, राजसूत, पुरोहित, दलपति, दूत, मन्त्री, मन्त्र, प्रयाण, हय, गज एवं संग्राम, आखेट, जलकेलि, विरह, स्वयंवर, सुरत आदि राज्यश्री भूषणों का वर्णन किया गया है।

नवमें प्रभाव में स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष (भेदसहित), सूक्ष्म, लेश, निर्दशना, उर्जस्वित, रसवदादि, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, अपहृति, वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, सहोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा, अमित, पर्यायोक्ति, युक्त, समाहित, सुसिद्ध, असिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परिवृत्ति, उपमा, यमक तथा विविध चित्रालंकारों का नाम दिया गया है। इस प्रकार केशवदास ने विशिष्टालंकार 37 भी कहे हैं। उनके भेदों का निरूपण भी किया है। इसमें से स्वभावोक्ति से उत्प्रेक्षा तक नवमें प्रभाव में, आक्षेपालंकार का भेदों के सहित दसवें क्रम से अपहृति अलंकार तक 11वें उक्ति से युक्ति तक 12वें समाहित से परिवृत्ति तक 13वें, उपमालंकार का 14वें, यमक का भेदसहित 15वें और चित्रालंकार का 16वें प्रभाव में लक्षणोदाहरण सहित विवेचन किया गया है।

आचार्य केशव के अलंकार-विवेचन पर संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों का प्रभाव

आचार्य केशवदास से पूर्व यद्यपि कतिपय नाम हिन्दी काव्यशास्त्र की परम्परा में प्राप्त हैं। महाकवि सूरदास कृत 'साहित्य लहरी' अलंकार एवं नायिका-भेद का ग्रन्थ प्रसिद्ध है कृपाराम की 'हिततरंगिणी' भी प्राप्त है। परन्तु आचार्य केशवदास से विधिवत् हिन्दी काव्यशास्त्र का विकास हुआ और संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों से प्रभावित होकर भी हिन्दी काव्यशास्त्र का अपना स्वरूप काव्य-शिक्षा के लिए पृथक् निर्धारित होने लगा। हिन्दी काव्यशास्त्र के आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव ग्रहण किया है। इसी क्रम में केशवदास द्वारा संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने गृहीत प्रभाव की चर्चा करना अपेक्षित है।

वर्णालंकार के अन्तर्गत केशवदास ने कविता में श्वेत, पीत, काला, अरुण, धूमर, नीला और मिश्रित रंग के वर्णन की शिक्षा दी है। अमर कवि ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में केवल छः रंगों का उल्लेख किया है। श्वेत-पीत, काला, नीला, अरुण और धूमर। आचार्य केशव मिश्र ने अपने ग्रन्थ अलंकार शेखर में श्वेत, पीत, अरुण, नीला और धूमर नाम से पाँच ही रंगों का वर्णन किया है। आचार्य केशव मिश्र ने काले रंग को नीले के अन्तर्गत माना है। अमर कवि ने कृष्ण, चन्द्राँक, राहु, यम, राक्षस, शनि, विष, अम्बर कुहू, अगरु, पाय, तम और निशा आदि वर्णन काले रंग के अन्तर्गत और केशव मिश्र ने नीले रंग के अन्तर्गत किया है। आचार्य केशवदास ने वर्णालंकार में अमर कवि का प्रभाव ग्रहण किया है। अमर कवि ने हरे रंग का वर्णन नहीं किया है। परन्तु आचार्य केशवदास के उपलक्षण के रूप में हरे रंग का वर्णन भी कर दिया है। बुध तथा मरकत आदि मणियाँ हरे रंग की ही कही हैं। मिश्रित वर्ण में आचार्य केशवदास ने श्वेत और कृष्ण, श्वेत और पीत, श्वेत और लाल रंग का बोध कराने वाले दो-दो अर्थों वाले शब्दों का उल्लेख किया है। अमर कवि द्वारा दिये गए अन्य रंगों को छोड़ दिया है। इस प्रकार मिश्रित रंगों के वर्णन में केशवदास अमर कवि से प्रभावित हैं और अन्य रंगों के अन्तर्गत दी हुई सूची के लिए केशव मिश्र के 'अलंकार-शेखर' से अधिक प्रभावित हैं। वस्तुतः वे दोनों ग्रन्थों के ही ऋणी हैं।

वर्णालंकारों के वर्णन में आचार्य केशवदास ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से प्रभाव ग्रहण किया है। आवर्त, गुरु, सत्य, झूठ, अगति तथा सद्गति आदि का वर्णन केशवदास की निजी उद्भावना का चमत्कार है।

भूमिश्री और राज्यश्री वर्णन में आचार्य केशवदास 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकार-शेखर' के ऋणी हैं। 'अलंकार-शेखर' में मन्त्री, राजकुमार, पुरोहित, दलपति, दूत और मंत्र का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु आचार्य केशवदास ने इनका वर्णन 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के आधार पर किया है।

विशिष्टालंकारों में आचार्य केशवदास ने संस्कृत काव्यशास्त्र के कई आचार्यों का प्रभाव ग्रहण किया है। सर्वथा किसी एक का ही नहीं। विभिन्न अलंकारों के विवेचन में इन आचार्यों का केशव पर प्रभाव परिलक्षित होता है।

आचार्य दण्डी और आचार्य केशवदास

विरोधाभासलंकार में केशवदास ने आचार्य दण्डी के मत का अनुसरण किया है और विरोधाभास को विरोध का एक भेद माना है। परन्तु विरोधाभासलंकार के लक्षण में आचार्य रूय्यक का प्रभाव है, क्योंकि आचार्य ने विरोधालंकार में विरोध का आभास का वर्णन माना है। केशव ने उसे ही विरोधाभास में कहा है। स्वभावोक्ति और विभावना के लक्षण दण्डी के 'काव्यादर्श' से लिये गए हैं—विभावना के दो भेद आचार्य दण्डी ने स्वाभाविक विभावना और करणान्तर विभावना नाम के कहे हैं। केशव ने उनका नाम प्रथम और द्वितीय विभावना कर दिया है। परन्तु दोनों के उदाहरणों का भाव एक-सा ही है। हेतु अलंकार में भी आचार्य केशवदास दण्डी के अनुयायी हैं। केशवदास के सभावहेतु और अभावहेतु नामक भेद आचार्य दण्डी के कारक हेतु के भेद ही हैं। भाव-साधन और अभाव-साधन ही कारक हेतु के दो भेद हैं। इनका ही प्रभाव केशवदास ने ग्रहण करके अपने हेतु अलंकार के दो भेद निरूपित किये हैं। केशवदास का समान हेतु का उदाहरण दण्डी के मतानुसार अभाव-साधन में कारकहेतु उदाहरण स्पष्ट दृष्टिगत होता है। विरोधालंकार का लक्षण आचार्य दण्डी और केशवदास ने एक सा दिया है। दोनों का लक्षण इस प्रकार है—

आचार्य दण्डी— विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।

विशेषदर्शनायेव सः विरोधः स्मृतो यथा॥

— काव्यादर्शः, पृष्ठ 295

आचार्य केशवदास— केशवदास विरोधमय रचियत वचन विचारि।

तासो कहत विरोध सब, कविकुल सुबुधि सुधारि॥ — कविप्रिया, पृष्ठ 199

आचार्य दण्डी से केशवदास ने इतना ही ग्रहण किया है। दण्डी के समान क्रिया विरोध, असंगति विरोध आदि छः भेदों का वर्णन केशवदास ने नहीं किया है।

आक्षेपालंकार में भी आचार्य केशवदास दण्डी से प्रभावित है परन्तु दण्डी ने तो 'प्रतिषेधोक्तिराक्षेपः' कहा है, परन्तु केशवदास ने वास्तविक प्रतिषेध को ही आक्षेप मान लिया है। आचार्य दण्डी ने तो भविष्य और वर्तमान में ही आक्षेप को माना है परन्तु केशवदास ने भूतकाल में भी आक्षेपालंकार का निरूपण कर दिया है। दण्डी ने तो आक्षेप के 24 भेद कहे हैं, परन्तु केशवदास ने केवल बारह भेद ही माने हैं। प्रेम, अधीरज, मरण तथा शिक्षाक्षेप का वर्णन आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' में नहीं मिलता है। आशिष और उपायाक्षेप के निरूपण में आचार्य केशवदास दण्डी के लक्षणोदाहरण के भाव को ग्रहण किये हुए हैं।

आशिषालंकार में दण्डी से प्रभावित होते हुए भी आचार्य केशवदास ने माता-पिता, गुरु, देव तथा मुनियों द्वारा दिये आशीर्वाद को ही आशिषालंकार मान लिया है। आचार्य दण्डी ने प्रेमालंकार में प्रियतर आख्यान की चर्चा की है। परन्तु केशवदास ने कपट मिटने और क्षेम के उत्पन्न होने की बात लक्षण में

कहीं है जो कि रीतिकाल के विलासमय जीवन से मेल नहीं खाती अपितु प्रेमभाव को यहाँ वासना-रहित और पवित्र माना गया है।

आचार्य केशवदास ने श्लेष के सात भेदों का वर्णन किया है। भिन्न पद, अभिन्न पद, अभिन्न क्रिया, भिन्न क्रिया, विरुद्ध कर्मा, नियम तथा विरोधी नामक श्लेष भेदों में भिन्न क्रिया और विरुद्ध कर्मा भेद केशवकृत मौलिक भेद हैं, शेष सभी आचार्य दण्डी से गृहीत हैं। श्लेष और सूक्ष्मालंकार में भी दण्डी के लक्षण को ही शब्दान्तर से कहा गया है। निदर्शनालंकार का लक्षण भी दण्डी से प्रभावित है। परन्तु सत् अथवा असत् फल का विशेषण किसी एक प्रकार से जोड़ दिया गया है।

ऊर्जालंकार में दण्डी से प्रभावित होते हुए भी आचार्य केशवदास ने अपनी मौलिकता प्रकट की है। आचार्य दण्डी ने ऊर्जालंकार वहाँ कहा है, जहाँ अहंकार का प्रदर्शन हो परन्तु केशवदास ने लक्षण यों दिया है—

तजै न निज हंकार को यद्यपि घटै सहाय॥ 11-51 ॥ कविप्रिया

‘यद्यपि घटै सहाय’ कहने से ऊर्जालंकार का लक्षण अधिक स्पष्ट हो गया है। रसवत् अलंकार में किसी रस के अन्य रस या भाव का आने होने और उस रस का पोषण करने का वर्णन होता है, परन्तु आचार्य दण्डी और केशवदास ने रसमय वर्णन में ही रसवत् अलंकार मान लिया है। ‘रसमय होय’ कथन से यही धारणा प्रकट होती है। शृंगार रसवत् का उदाहरण तो केशवदास ने ठीक दिया है, परन्तु अन्य उदाहरण तो विभिन्न रसों के उदाहरण हैं, रसवत् के नहीं हैं।

अर्थान्तरन्यास अलंकार में आचार्य केशवदास ने दण्डी से युक्तायुक्त सामान रूप से ग्रहण करके लिखा है। युक्त और अयुक्त भेद तो दण्डी के युक्तात्मा और अयुक्तात्मा से ग्रहण किये हुये हैं। नाम मात्र का अन्तर है। व्यतिरेकालंकार का लक्षण भी दण्डी-कृत व्यतिरेक का भावानुवाद ही है। दण्डी ने व्यतिरेक के दस भेद कहे हैं, परन्तु आचार्य केशवदास ने व्यतिरेक के सहज और युक्त नामक भेद दो ही कहे हैं। उदाहरणों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि दण्डी के श्लेष, व्यतिरेक का ही नाम केशवदास ने युक्त व्यतिरेक माना है। अपहृति अलंकार के लक्षण में भी केशवदास दण्डी के ऋणी हैं। केवल केशवदास ने दण्डी की भाँति अपहृति भेदों की चर्चा नहीं की है। आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल ने अपने ग्रंथ ‘केशव की काव्यकला’ में लिखा है कि केशव ने अपहृति अलंकार का उदाहरण उचित नहीं दिया है वह तो ‘मुकरी’ है अपहृति नहीं है। अपहृति को मुकरी नहीं कहा जा सकता। सहोक्ति अलंकार का लक्षण दण्डी और केशवदास का एक समान है—

दण्डी— सहोक्तिः सह भावेन कथनं गुणकर्मणम्॥ काव्यादर्श, पृष्ठ 319।

केशवदास— हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु कहिये गूढ़ प्रकास।

होय सहोक्ति सु साथ ही वरनत केशवदास॥ 11वाँ प्रभाव॥

व्याजस्तुति के लक्षण में भी आचार्य दण्डी कृत लक्षण का आधार लिया गया है। दण्डी ने व्याजस्तुति का प्रसंग वहीं माना है, जहाँ प्रकट में निंदा परन्तु वास्तव में स्तुति हो, किन्तु आचार्य केशवदास व्याजस्तुति अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ निंदा के व्याज से स्तुति अथवा स्तुति के व्याज से निंदा की जाये। इसलिए केशव-कृत लक्षण अधिक व्यापक है। समाहित अलंकार में केशव आचार्य दण्डी से किंचित् ही प्रभावित हैं। आचार्य केशव किसी प्रकार सिद्ध न होते हुए कार्य को दैवी सहायता से निष्पन्न होने में

समाहित अलंकार मानते हैं, परन्तु दण्डी आरम्भ किये हुए कार्य की सिद्धि दैवी सहायता से होने के स्थल में समाहित अलंकार मानते हैं। परन्तु उदाहरण तो दण्डी के उदाहरण का भावानुवाद मात्र है—

दण्डी— मानमस्या निराकर्तु पादमोर्मे पतिष्यतः।
 उपकाराय दिष्टयेतनुदीर्घनगर्जितम्॥ —काव्यादर्श, पृष्ठ 281।

केशवदास— छवि सौं छबीली वृषभान की कुंवरि आजु,
 रही हुति रूप मद मान मद छकि कै।
 मारहू ते सुकुमार नन्द के कुमार ताहि,
 आये री मनभावन सयाने सब ताकि कै।
 हंसि हंसि सौहैं करि करि पांय परि परि,
 केशोराय की सौं जब रहे जिय जकि कै।
 ताहि समैं उठे घन घोर घोरि, दामिनी सी,
 लागी लौटि श्यामघन उरसौं लपकि कै॥ कविप्रिया, 11-23॥

रूपकालंकार में दण्डी और केशवदास के विरुद्ध रूपक और रूपक का मात्र नामसम्य है किन्तु लक्षण दोनों के सर्वथा भिन्न हैं। यद्यपि दण्डी ने अद्भुत रूप की चर्चा नहीं की है परन्तु केशवदास के अद्भुत रूपक के उदाहरण पर दण्डी के शिल्प रूपक के उदाहरण की गहरी छाप दृष्टिगत होती है। दीपकालंकार का लक्षण दोनों आचार्यों का एक समान है। आचार्य केशवदास ने मणिदीपक और माला दीपक नाम दो भेदों का विवेचन किया है। मणिदीपक के दूसरे उदाहरण पर दण्डीकृत जाति-दीपक के उदाहरण की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

प्रहेलिकालंकार का व्याख्यान आचार्य केशवदास ने दण्डी की भाँति ही किया है। उपमालंकार का विस्तृत वर्णन भी दण्डी की भाँति केशवदास ने किया है। केशवदास ने सादृश्य कथन के साथ ही उपमालंकार के लक्षण में रूप, गुण, शीलादि का उल्लेख किया हुआ है—

केशवदास— रूप शील गुण होय सम जो क्यों हू अनुसार।
 तासों उपमा कहत कवि केशव बहुत प्रकार॥ कविप्रिया 16-1

दण्डी— यथा कथंचित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते।
 उपमा नाम सो तस्या प्रपंचोयं निदर्शने॥ काव्यादर्श।

आचार्य केशवदास ने दण्डी की भाँति उपमा के 32 भेद न कहकर केवल 22 भेद ही कहे हैं। केशवदास के संकीर्णोपमा और विपरीतोपमा भेद दण्डी के उपमा-भेदों के अंतर्गत नहीं आते हैं। इस संबंध में लाला भगवानदीन का कथन दृष्टव्य है—

संकीर्णोपमा में ठीक समता तो नहीं, पर समता का सा भाव अवश्य भासित होता है। विपरीतोपमा के लिए भी लिखा है कि इसमें उपमा अलंकार जान नहीं पड़ता। समझ में नहीं आता कि केशव ने कैसे इसे उपमा के अंतर्गत माना है। (कविप्रिया पाद टिप्पणी-पृष्ठ 363, 371) अन्य उपमा-भेदों के लक्षणों में केशवदास आचार्य दण्डी से प्रभावित हैं।

यमकालंकार का सारा विवेचन आचार्य केशवदास ने दण्डी के आधार पर ही किया है। केशव ने यमक के सभी भेदोपभेद तो नहीं लिये हैं, वे सभी दण्डी के काव्यादर्श में दिये लक्षण से अधिक प्रभावित हैं—

विशिष्टालंकारों में विभावनालंकार के लक्षण आचार्य रुय्यक के 'अलंकारसर्वस्व' में दिए लक्षण से अधिक प्रभावित हैं—

आचार्य रुय्यक— कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना—*अलंकार सर्वस्व*, पृष्ठ 138

केशवदास— कारज को बिनु कारणहि उदौ होत जेहि ठौर—*कविप्रिया*, पृष्ठ 186

तासों कहत विभावना केशव कवि शिर मौर॥ 9-11॥

विरोधाभास का लक्षण भी रुय्यक-कृत विरोधालंकार-लक्षण से प्रभावित है। केशव का क्रमालंकार आचार्य रुय्यक के एकावली अलंकार से प्रभावित है। केशव ने जाने क्यों रुय्यक के एकावली अलंकार को क्रम कह दिया है। क्रमालंकार तो यथासंख्यालंकार है। विशेषालंकार में भी केशवदास आचार्य रुय्यक के ऋणी हैं। लक्षण भिन्न शब्दों में लिखा होने पर रुय्यक-कृत लक्षण से प्रभावित हैं। उदाहरण के समुद्रबन्ध के शब्दों से सर्वथा साम्य है। इस प्रकार आचार्य केशवदास अपने अलंकार-विवेचन में आचार्य दण्डी और आचार्य रुय्यक, अमर कवि एवं केशव मिश्र से प्रधानतया प्रभावित हैं। शेष संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों में से किसी का प्रभाव अलंकार-विवेचन में प्रकटतः दृष्टिगत नहीं होता। किंचित् कथन-साम्य कदाचित् कहीं दृष्टिगत हो सकता है।

आचार्य केशवदास की अलंकार-विवेचन में मौलिकता

मौलिकता के प्रसंग में आचार्य केशवदास की काव्यशास्त्रीय प्रतिभा का उल्लेख विशेषतया किया जा सकता है। 'कविप्रिया' का निम्नण आचार्य केशवदास ने रायप्रवीण के लिए करते हुए भी कहा है कि बालाएँ और बालक कविता की अगाध रीति को समझ सकें, इसलिए इस ग्रंथ को रचा गया है—

समझैं बाला बालकहु, वर्णन-पंथ अगाध।

कविप्रिया केशव करी, छमियो कवि अपराध॥ 31॥

इसका अर्थ यह है कि आचार्य केशवदास ने काव्य-शिक्षा के लिए शिक्षक की भाँति इस ग्रंथ को लिखा। ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल शासकों के दरबारों में कविता (शेरो शायरी) उस्तादों ओर शार्गिदों के रूप में प्रचलित थी। केशव ने भी राजपूती दरबारों में गुरु-शिष्या-शिष्य परम्परा से काव्य शिक्षा का श्रीगणेश किया और हिन्दी काव्य के रचनाकारों के लिए काव्यभाषा में मार्ग प्रशस्त किया।

अलंकारों की चर्चा चलाते हुए उन्होंने कहा कि काव्यालंकारों के विविध विचारों के जान-पहचान लेने के अनन्तर 'कविता का सिंगार' रूप यह 'कविप्रिया' लिखी गयी है। 'कविप्रिया' को कंठमाला भी कहा है और कंठस्थ करने का उपदेश भी केशवदास ने शिक्षक आचार्य की भाँति दिया है।

जदपि सुजाति सुलक्ष्मी-नामक कथन में केशवदास ने काव्य में अलंकारों का स्थान सर्वातिशायी माना है। उन्होंने रसवाद का विरोध नहीं किया परन्तु 'रसमयी' कविता के लिए भी 'भूषण' की आवश्यकता पर स्पष्टतः बल दिया है। इससे उन्हें अलंकारवादी आचार्य सहज में माना जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि उनके श्रृंगार रस के अगणित उदाहरण उत्कृष्ट हैं। अन्य रसों के उदाहरण भी सुन्दर हैं। परन्तु **उन्होंने जैसा**

अलंकारों के क्षेत्र में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है, वैसा रस-विवेचन या नायिका-भेद में कदाचित् दृष्टिगत नहीं होता है।

अलंकार-भेद की चर्चा करते हुए आचार्य केशवदास ने परम्परागत (1) शब्द, (2) अर्थ एवं (3) उभयालंकार वर्गों का नाम नहीं लिया। यद्यपि प्रहेलिका, चित्र और यमकालंकार शब्दालंकार है और विशिष्टालंकार (37) अर्थालंकार हैं तथा आचार्य केशवदास ने सामान्य और विशिष्ट भेद से अलंकारों के दो वर्ग किए हैं—

कविन कहे कवितान के, अलंकार द्वै रूप।

एक कहै साधारणै एक विशिष्ट सरूप॥

और सामान्यालंकारों को वर्ण, वर्ण्य, भूमि-भूषणों और राज्यश्रीभूषणों के रूप में चार भेदों में विभक्त कर दिया। अब प्रश्न उठता है कि आचार्य केशवदास ने ऐसा क्यों किया। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य केशव राज्याश्रित कवि-आचार्य थे। वे अपने आश्रयदाता को भी अप्रसन्न नहीं कर सकते थे और काव्यशास्त्रीय विशिष्ट परम्परा को भी अक्षुण्ण रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने राजा से संबंधित देश, नगर, नदी, दुर्गादि, के साथ ही राजा, रानी, मंत्री, राजकुमार आदि का जीवन भूमिश्रीभूषण और राज्यश्रीभूषणों में रख करके राजसत्ता को भी संतुष्ट कर दिया और विशिष्ट अलंकारों में परिगणित काव्य-चमत्कार के अलंकारों को पृथक् भी रख दिया। दोनों ही पक्षों का निर्वाह अत्यन्त कुशलता से आचार्य केशवदास ने कर लिया है।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास' में इस वर्गीकरण के संबंध में लिखा है कि 'केशव की कविप्रिया में हमें अलंकारों के वर्गीकरण की बात विशेष रूप में मिलती है। उक्ति, उपमा (तुलना) यमक (शब्द की आवृत्ति), श्लेष (बहु अर्थता), विरोध (कार्यकारण का सम्बन्ध) आदि वर्गीकरण के आधार हैं, जिन पर केशव ने उन्हें रखा है। केशव शायद इसका वर्गीकरण और सुदृढ़ आधार पर कर सकते, यदि उनके सामने 'कविप्रिया' पुस्तक को एक स्त्री के रूप में 16 प्रभाव रूप, 16 शृंगारों में विभक्त करने की काव्यात्मक कल्पना विद्यमान न होती' (पृष्ठ 63)। डॉ. भगीरथ मिश्र के कथन से केशवदास का वर्गीकरण अधूरा लगता है। परन्तु उक्त कथन से ज्ञात हो जाता है कि केशवदास में नवीन वर्गीकरण के प्रति आग्रह था जो उन्होंने सामान्य और विशिष्ट वर्गों के कथन में संकेतित किया है।

वर्ण और वर्ण्यालंकारों में कवि अमर एवं आचार्य केशव मिश्र के ग्रंथों से प्रभावित होते हुए भी आचार्य केशवदास ने अनेक स्थलों पर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। इसी प्रकार विशिष्टालंकारों के संबंध में भी उन्होंने आचार्य दण्डी, रुय्यकादि के अलंकार-लक्षणों, भेदों एवं उदाहरणों में अपनी प्रतिभा का कौशल प्रकट किया है।

नवीन अलंकारों की उद्भावना—विशिष्टालंकारों के अंतर्गत केशवदास द्वारा आचार्य केशव मिश्र के आधार ग्रहण करके 'गणना' तथा उद्भट और भामह के आधार पर आशिष अलंकार का निरूपण हिन्दी काव्यशास्त्र में नवीन ही था। इसके अतिरिक्त केशव के प्रेम, सुप्रसिद्ध, प्रसिद्ध और विपरीतालंकार सर्वथा नवीन है। इनका वर्णन संस्कृत काव्यशास्त्र में कदाचित् दृष्टिगत नहीं होता है। इसी प्रकार पाँच-पाँच अर्थों वाले श्लेष का प्रयोग भी सोदाहरण प्रथम बार आचार्य केशवदास ने हिन्दी काव्यशास्त्र में प्रस्तुत किया

है। श्लेष के प्रति आचार्य केशवदास का आग्रह सर्वत्र दृष्टिगत होता है। यह भी उनके मौलिक चिन्तन का एक पक्ष है। सुमिद्दालंकार की परिभाषा करते हुए केशवदास ने कहा है—

साधि साधि औरैं मरैं औरैं भोगैं सिद्धि।

तासों कहत सुसिद्धि सब, जिनके बुद्धि समृद्धि॥ 13-4॥

इस लक्षण में सामाजिक शोषण का भाव व्यक्त करने की रीति कही गयी है। उदाहरण भी पठनीय है—

मूलन सों फलफूल सबै दल जैसी कछु रस रीति चली जू।

भाजन भोजन भूषण भामिनि भौन भरी भव भाँति भली जू॥

डासन आसन वास सुवासन, बाहन यान विमान थली जू।

केशव जैसे महाजन लोग मरैं सचि भोगत भोग बली जू॥ 13-5॥

केशव के काल में शोषण की नींव कितनी गहरी थी। इस ओर आचार्य केशव का ध्यान गया था। दूसरा उदाहरण लेखकों के शोषण की दशा का बोधक है—

शरधा संचि संचि मरैं शहर मधुपान करत मुख।

खनि खनि मरत गंवार कूप जल पथिक पिबत सुख॥

बागवान बहि मरत फूल बांधत उदार नर।

पचि पचि मरत सुआर, भूप भोजननि करत वर॥

भूषण सोनार गढ़ि गढ़ि मरैं भामिनि भूषित करत तन।

कहि केशव लेखक लिखि मरहिं पंडित पढ़ैं पुरान गन॥ 13-6॥

केशव के आचार्यत्व की शिथिलता का पक्ष

यह सत्य है कि आचार्य केशवदास ने संस्कृत काव्यशास्त्र की अलंकार-परम्परा में कतिपय सर्वथा नवीन और कई अलंकारों के नवीन भेदों का विवेचन किया और अपने युग की सामाजिक एवं नैतिक-अनैतिक स्थिति को उदाहरणों में चित्रित किया तथा उनके अलंकार-विवेचन में कहीं-कहीं शिथिलता भी दृष्टिगत होती है।

आचार्य केशवदास के क्रमालंकार, निदर्शना एवं स्वाभावोक्ति के लक्षणों में स्पष्टता नहीं है। क्रमालंकार को रुय्यक-कृत एकावली अलंकार लक्षण से सम्बद्ध कर दिया है। 'आदि अंत भरि वरणिये सो क्रम केशवदास' में अस्पष्टता झलकती है। स्वाभावोक्ति और युक्त अलंकार का लक्षण प्रधानतया समान सा लगता है—

स्वाभावोक्ति— जाको जैसा रूप गुण, कहियै ताहि साज।

तासों जानि स्वभाव सब, कहि बरणत कविराज॥ 9-8॥

युक्त— जाको जैसा रूप बल, कहिये ताहि रूप।

ताको कवि कुल युक्त कहि, बरणत विविध स्वरूप॥ 12-3॥

इसी प्रकार पर्यायोक्ति और समाहित के लक्षण समान हैं। निदर्शनालंकार का लक्षण भी स्पष्ट नहीं बन पड़ा है—

कौन हु एक प्रकार तें, सत अरु असत समान।

करिये प्रगट निदर्शना, समुझत सकल सुजान॥ 11-49॥

निदर्शनालंकार के लक्षण में वस्तुओं के सम्बन्ध में अभाव की चर्चा की ही नहीं है। दो भेद कह दिये हैं। इससे लक्षण स्पष्ट नहीं हुआ है।

अलंकारों के उदाहरणों में भी कहीं-कहीं समन्वय का अभाव खटकता है। विरोधालंकार का दूसरा उदाहरण विरोध की अपेक्षा प्रथम विभावना के रूप में अधिक संगत लगता है। लाला भगवानदीप ने भी 'कविप्रिया' की टिप्पणी में लेखकों या लिपिकारों को दोष दिया है परन्तु केशवदास ने ही ऐसा किया लगता है। केशव के अतिशयोपमा, अनन्योपमा, अभूतोपमा के लक्षणोदाहरणों में भी उचित समन्वय दिखाई नहीं पड़ता है। रीतोपमा के उदाहरण में उपमालंकार का स्वरूप ही नहीं है—

भूषित देह विभूति दिगंबर नाहि न अम्बर अंग नवीनो।

दूरि कै सुन्दरि सुन्दरी केशव दूरि दरीन में आसन कीनो।

देखिय मंडित दंडन सो भुजदंड दोऊ असि दंड विहीनो।

राजनि श्री रघुनाथ के राज कुमंडल छांडि कमंडल लीनो॥ 14-24॥

इस प्रकार केशवदास के अलंकार-संबंधी विवेचन से स्पष्ट है कि उनमें मौलिक चिन्तन की शक्ति थी। उन्होंने अलंकारों के विकास में योग दिया। इसके साथ ही कहीं-कहीं उनके अलंकार-लक्षणों में शिथिलता भी दृष्टिगत होती है जो कदाचित् आचार्यकर्म में मतभिन्नता के कारण भी संभव है और अपनी बौद्धिक स्थिति के कारण भी तथापि आचार्य केशव की अलंकार-विवेचना संबंधिनी मौलिकता का पक्ष प्रबल है।

केशव के आचार्यत्व का परवर्ती (रीतिकालीन) काव्यशास्त्र पर प्रभाव

आचार्य केशवदास का समय रीतिकाल के प्रारम्भ से पूर्व है। यह तथ्य इतिहास-सम्मत है तथापि वे रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं। चिन्तामणि और केशवदास के मध्यवर्ती 50 वर्षों की कड़ी की बात भी अब महत्वपूर्ण नहीं रही। इस पर भी विचारणीय तथ्य यह है कि किसी काल के वास्तविक रूप में प्रचलित एवं परम्परा-विकास से पूर्व उसका प्रवर्तन पूर्ववर्ती काल में ही हो जाता है। यही रीतिकाल के प्रवर्तन में भी हुआ। आचार्य केशवदास ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' लिखकर रस-नायिकाभेद, गुण, दोष एवं अलंकार आदि काव्यशास्त्रीय विविधांगों का निरूपण भक्तिकाल के अन्तिम चरण में कर दिया। चिन्तामणि के बीकानेर स्थित अनूप संस्कृत ग्रंथालय में दो पांडुलिपियों में प्राप्त 'रस-विलास' ग्रंथ में रसिकप्रिया के अनेक पद उद्धृत हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि आचार्य शुल्क द्वारा स्वीकृत रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य चिन्तामणि भी आचार्य केशवदास से प्रभावित थे तब आचार्य केशवदास स्वतः ही रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य सिद्ध हो जाते हैं। डॉ. राम कुंवर राय ने अपने चिन्तामणि, श्रीपति एवं कुलपति मिश्र के ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन संबंधी ग्रंथ में लिखा है कि केशव की 'रसिकप्रिया' के आधार पर लिखा गया चिन्तामणि का 'रसविलास' रस एवं नायक-नायिका भेद विषयक ग्रंथ है। नवरसोपाख्यान में चिन्तामणि ने 'रसिकप्रिया' का अनुकरण किया है। 'रसिकप्रिया' में आचार्य केशव ने शृंगार को उच्च आसन प्रदान कर उसके आलम्बन भगवान् श्री कृष्ण को सभी रसों का आलम्बन विभाग स्वीकार कर लिया है इधर आचार्य चिन्तामणि ने केशव के ही अनुसरण पर 'रसविलास' में शृंगार को उच्चासन प्रदान किया तो अवश्य पर

अन्य रसों को उपस्थित नहीं किया जिसका संभव कारण था—इस क्षेत्र में केशव से असहमति। चिन्तामणि ने संयोग एवं वियोग पक्षों के प्रच्छन्न और प्रकाश-भेद केशव के ही अनुकरण पर उपस्थित किये गये हैं। तुलनार्थ 'रसिकप्रिया' के प्रथम प्रकाश के 18वें और 'रसविलास' के 8वें परिच्छेद के छठे पद को देखा जा सकता है। नायिका का जातिगतभेद प्रत्यक्षतः केशव के अनुकरण पर उपस्थित किया गया है पर आचार्य चिन्तामणि ने शुद्ध कामशास्त्रीय लक्षणों से बचने का यथाशक्ति प्रयास किया है, इससे आचार्य केशव के मौलिक विचारक होने की धारणा को और भी बल मिलता है।

आचार्य चिन्तामणि ने चाहे रीतिकाल में काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे और आचार्य मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का अनुवाद भी हिन्दी भाषा में किया, परन्तु चिन्तामणि की परम्परा पर चलने वाला कोई भी कवि-आचार्य रीतिकाल में दृष्टिगत नहीं होता। परन्तु आचार्य केशवदास से चिन्तामणि के अतिरिक्त देव, भिखारीदास, सोमनाथ एवं 'अलंकार माला' के लेखक दास कवि भी प्रभावित हुए। केशवदास की 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' की अनेक टीकाएँ परवर्ती काल में लिखी गयीं और दो सौ वर्षों तक कवि एवं काव्यशास्त्रीय आचार्य इन दोनों ग्रन्थों का अध्ययन करते रहे। इसलिए आचार्य केशवदास से रीतिकाल के काव्यशास्त्रीय आचार्य बहुधा प्रभावित रहे। यहाँ कतिपय आचार्यों की तुलना केशवदास के अलंकार-विवेचन से प्रस्तुत की जा रही है जिससे उनके आचार्यत्व का पक्ष समर्थित होता है।

रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय विवेचन के लिए पाँच शैलियाँ प्रचलित हुईं। प्रथम शैली दोहों में ही लक्षणोदाहरण देने की थी। दूसरी शैली बड़े छन्दों में लक्षणोदाहरण देने की प्रचलित हुई। तीसरी शैली के अनुसार दोहों में लक्षण और कवित्त-सवैया जैसे छन्दों में उदाहरण देने की चली। चौथी शैली में कतिपय ऐसे आचार्य सामने आये, जिन्होंने लक्षण स्वयं लिखे परन्तु उदाहरण दूसरे कवियों के दिये हैं। पाँचवीं शैली यह थी कि अलंकारों के नाम एवं लक्षण कवित्त जैसे एक बड़े छन्द में और तदनन्तर उदाहरण भी एक या दो पंक्तियों में क्रमशः बड़े छन्दों में दिये गये हैं। प्रथम शैली के 'भाषाभूषण' के लेखक आचार्य महाराज जसवन्तसिंह, 'काव्याभरण' के लेखक चंदन कवि तथा 'पद्माभरण' के कर्ता पद्माकर जैसे लेखक थे। दूसरी शैली में उमेदराय ने 'वाणीभूषण' में लिखा। तीसरी शैली में आचार्य केशवदास ने अपने ग्रंथ लिखे। परवर्ती युग में सुखदेव मिश्र का 'फाजिलअली प्रकाश' ब्रह्म कवि का 'दीप प्रकाश', रसिक गोविन्द-कृत 'रसिकगोविन्दानन्द घन' और आचार्य अमीरदास-कृत 'श्रीकृष्णसाहित्यसिन्धु' ग्रन्थ विख्यात हैं। चौथी शैली में रसरूप कृत 'तुलसीभूषण' तथा श्रीपति का 'काव्यसरोज' प्रसिद्ध है। पाँचवीं शैली के दर्शन दूलह के 'कविकुलकंठाभरण' तथा देव के 'शब्दरसायन' में होते हैं। इस परम्परा में भी रीतिकाल में आचार्य केशवदास का अनुकरण बहुसंख्यक आचार्यों ने किया है।

आचार्य केशवदास और महाराज जसन्त सिंह

आचार्य केशवदास की भाँति महाराज जसवन्त सिंह ने नायिका भेद और अलंकार-विवेचन नहीं किया। अपितु जयदेव के 'चन्द्रालोक' के आधार पर अलंकार-विवेचन किया और उससे पूर्व नायक-नायिका भेद, सात्त्विक भाव, हाव, विरह की दशदशाएँ, नवरस, स्थायीभाव, उद्दीपन, आलम्बन, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का संक्षेपतः वर्णन किया है। 198 अर्थालंकारों और शब्दालंकारों में केवल अनुप्रास के छः भेदों का निरूपण किया है। आचार्य केशव ने केवल 37 विशिष्टालंकारों का विवेचन किया है, परन्तु दोनों आचार्यों के ग्रंथ प्रणयन का लक्ष्य एक समान है। आचार्य केशवदास ने काव्य-कवि बनने वालों की शिक्षा-हेतु लिखा और महाराज जसवन्त सिंह ने भाषा-पंडितों के लिए 'भाषाभूषण' को लिखा है।

केशव और कविभूषण

कविभूषण ने 'शिव (राज) भूषण' ग्रंथ शिवाजी के चरित्र को अलंकारों से अलंकृत करने के लिए लिखा। भूषण की विशेषता यह है कि उसने वीररस के बहुसंख्यक उदाहरण दिये हैं। वीररस के उदाहरणों में 105 अलंकारों की संगति सिद्ध की है। आचार्य केशवदास ने कतिपय उदाहरण ही वीररस के दिये हैं। इनके उदाहरण सभी रसों के हैं। भूषण ने श्लेष के भेदों का निरूपण नहीं किया है जबकि केशवदास ने श्लेषनिरूपण में अपनी प्रतिमा का कौशल प्रकट किया है। व्यतिरेकालंकार का भूषण ने निरूपण नहीं किया जबकि केशवदास ने उसके दो भेद भी कहे हैं। विभावालंकार के भेदों के लक्षणों में दोनों आचार्यों के कथनों में साम्य है। केशव के परिवृत्त का लक्षण भूषण के विषादनालंकार से मिलता है—

केशव परिवृत्त लक्षण—

जहाँ करत कछु और ही उपजि परत कछु और।
तासों परिवृत्त जानिये केशव कवि सिरमौर।।

भूषण-विषादन-लक्षण—

जहं चित्त चाहे काज ते, उपजत काज विरुद्ध।
ताहि विषादन कहत हैं, भूषण बुद्धि सुबुद्ध।।

आचार्य केशवदास और देव

आचार्य केशवदास से देव कवि अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने काव्य में अलंकारों की उपयोगिता केशव के समान ही प्रतिपादित की है। जदपि सुजाति सुलक्षनी पद में थोड़े हेर फेर से केशवदास की स्थापना का ही समर्थन किया है। शृंगार के प्रच्छन्न-प्रकाश भेद भी केशव की भाँति किए हैं। अलंकार-निरूपण भी भाव-विलास में 39 अलंकारों का मुख्यतया किया है। केशवदास ने 37 अलंकार विशिष्ट कहे हैं। देव ने दो और जोड़ दिये हैं। विवेचन-पद्धति भी आचार्य केशवदास की ही अपनायी है परन्तु देव का आग्रह रसवाद की ओर रहा, जबकि केशव को अलंकारवादी होना प्रिय था।

आचार्य केशवदास और भिखारीदास

यद्यपि भिखारीदास से पूर्व आचार्य सुखदेव बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे तथापि आचार्य भिखारीदास का स्थान रीतिकाल में विशेष मान्य रहा है। आचार्य केशवदास और भिखारीदास ने रस, नायिकाभेद, गुण-दोष, अलंकार और छन्दों का विवेचन किया है। दोनों ही आचार्यों ने अलंकारों के वर्गीकरण का मौलिक प्रयास किया है। आचार्य केशवदास से सामान्य और विशिष्ट वर्ग माने तो भिखारीदास ने उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विरुद्धादि वर्ग माने हैं। आचार्य भिखारीदास ने श्लेष, विरोधाभास, मुद्रा, वक्रोक्ति, पुनरुक्तवदाभास को शब्दालंकार कहा है जबकि केशवदास ने श्लेष को अर्थालंकार भी माना है। शब्दालंकारों में केशवदास ने यमकालंकार का विस्तृत विवेचन किया है, पर भिखारीदास ने उसे विस्तृत रूप से विवेचित नहीं किया है। यह तथ्य दृष्टव्य है कि दोनों आचार्यों के विवेचन में कितना भेद है।

आचार्य केशवदास के समान आचार्य भिखारीदास ने श्लेषालंकार का निरूपण नहीं किया है। केशव तो श्लेषप्रिया कवि आचार्य हैं। जबकि भिखारीदास के श्लेष-निरूपण में परम्परा निर्वाह मात्र है। भिखारीदास ने वीप्सा, सिंहावलोकन (यमक-भेद मात्र) का निरूपण किया है, केशवदास ने इन दोनों अलंकारों का नाम

भी नहीं लिया है। दोनों आचार्यों में से भिखारीदास ने अनेक काव्यांगों का निरूपण किया है, जबकि केशवदास ने उतने अधिक काव्यांगों को विवेचन का आधार नहीं बनाया है।

निष्कर्ष

इस तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर महाराज जसवन्त सिंह और भूषण अलंकार-विवेचन में केशवदास के समकक्ष नहीं ठहरते हैं। आचार्य देव एवं भिखारीदास अवश्य ही उनसे आगे हैं। आचार्य सुखदेव का अलंकार-रस-निरूपण केशवदास से बढ़-चढ़कर नहीं किया गया है। उन्होंने केशव पद्धति का अनुगमन ही किया है। देव ने नायिकाभेद में विकास किया है और भिखारीदास ने शब्द शक्ति-विवेचन, दोष विवेचन, तुकादि के निरूपण में अधिक सफलता पाई है। संभवतः केशव के युग से इस युग के काव्यशास्त्रीय विवेचन में अन्तर आ गया था और कवि-आचार्य काव्यशास्त्रीय अंगों का विस्तृत निरूपण करने में जुट गए थे।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से प्रमाणित होता है कि 'कविप्रिया' में आचार्य केशवदास ने काव्यशास्त्र के गुण दोषों का संक्षिप्त निरूपण किया और अलंकारों का विवेचन विस्तार से प्रस्तुत किया। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य दण्डी, रुय्यक, कवि अमर एवं आचार्य केशव मिश्र के ग्रंथों से प्रभाव ग्रहण किया परन्तु अपने अलंकारों के भेदोपभेदों के संबंध में अपने मौलिक विचार भी प्रकट किए हैं। प्रेम, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, व्यधिकरणोक्ति आदि कतिपय नवीन अलंकारों की उद्भावना भी की है और इन नवीन अलंकारों के उदाहरणों में अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का चित्रण भी किया है। श्लेष, उपमा और यमकालंकार का विस्तृत निरूपण करके इन अलंकारों को भाषा-काव्य के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध किया है। संभवतः इसीलिए रीतिकाल में अनुप्रसास और यमकालंकार को 'रसपूर' कहा गया है। उपमा अलंकार तो अलंकार-माता युगों से सिद्ध ही था। इस काल में उपमालंकार का प्रयोग कवियों ने खूब किया। इसके अतिरिक्त आचार्य केशवदास की 'कविप्रिया' का अध्ययन-क्रम भी रीतिकाल में निरंतर चलता रहा और यह काव्यशास्त्र का प्रामाणिक आधार ग्रंथ माना गया। अतः काव्यशिक्षार्थ लिखित 'कविप्रिया' मौलिक चिन्तन की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना विख्यात हो गई।

(ख) आचार्य केशवदास की काव्यकला

आचार्य केशवदास का युग शृंगाररस के प्रति आसक्त था। उस काल के सभी कवि शृंगार काव्य लिखकर अपने काव्य कौशल का प्रदर्शन करते थे। राजाश्रय के कारण कवियों की दृष्टि अन्य विषयों की ओर कम हो जाती थी इसलिए केशवदास ने भी अपने काव्य में मात्रा में शृंगार का वर्णन अधिक किया है। उनके शृंगार वर्णन में सफलता के संबंध में भी विद्वानों में बहुधा मतभेद है। आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'केशव की काव्यकला' में लिखा है कि वे एक विलासी राज-दरबार में रहते थे। उस दरबार में वेश्याओं की संख्या कितनी थी, इसका तो ठीक-ठाक पता नहीं, लेकिन उनमें जो छः मुख्य थीं, उनका वर्णन केशवदास जी ने बड़े सम्मान से किया है। संदेहालंकार का आश्रय ले उमा, रमा, ब्रह्माणी के रूप में केशव ने उन्हें देखा है। इन वेश्याओं का महत्त्व उस दरबार में कितना था, इसका पता कुछ-कुछ इस बात से लग सकता है कि उनमें से एक के पढ़ाने के लिए केशव को अपने एक मुख्य ग्रंथ 'कविप्रिया' की रचना करनी पड़ी। वेश्याओं के संसर्ग में रहने वाले कवि तथा भावुक राजाओं का शृंगारविषयक आदर्श

कैसा होगा, यह सरलतया समझा जा सकता है। संयत तथा व्यंग्यात्मक शृंगारिक उक्तियों से ऐसे समाज का संतोष नहीं हो सकता। कवि को ऐसे स्थानों पर बात बहुत कुछ खोल कर करनी पड़ेगी, क्योंकि जिस गम्भीरता तक पाठक अपने नित्य के जीवन में रहते हैं, उससे अधिक गम्भीरता अथवा उच्छृंखलता का चित्रण उनके लिए आकर्षण हो सकता है। संयत शृंगार न तो केशव को स्वयं रुचता रहा होगा, न ओरछे के दरबार में उसका कुछ मूल्य आंका जा सकता था। आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल के इन विचारों के विपरीत केशव के काव्य में संयत-शृंगार के चित्रण भी मिलते हैं। 'कविप्रिया' का एक पद इसी स्थिति के उदाहरण के रूप में यहाँ प्रस्तुत है—

दै दधि, दीनो उधार हो केशव, दानी कहा जब मोल लै खैं हैं।
 दीन्हें बिना तो गई जु गई न गई घर ही फिर जैहैं॥
 गौ हित बैरु कियो, हितु हो कब, बैरु किये बरु नीके ही रैहैं।
 बैरु के गोरस बेचहुगी, जंहो बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न दैहैं॥

यहाँ केशव के कृष्ण एक गोपी को मार्ग में घेर कर खड़े हैं और उससे 'दधि' माँगते हैं। गोपी तो कृष्ण को दही देने की इच्छा रखते हुए भी दही नहीं देती है और उन्हें खिझाती रहती है। यह प्रेम की रार ही तो है। शृंगार का आकर्षक रूप ही है। बातों-ही-बातों में शृंगार रस का सागर छलक रहा है। इसलिए यह कहना कि केशव ने सर्वत्र असंयत शृंगार का ही चित्रण किया है, उचित नहीं लगता है।

केशवदास ने 'रसिकप्रिया' में शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों-वीर, भयानक, रौद्र, हास्य, करुण आदि के उदाहरण भी दिये हैं परन्तु 'कविप्रिया' में रसवत् अलंकार के अंतर्गत इन सभी रसों के उदाहरण दिये गए हैं। जिनमें विभिन्न रसों का आलंकारिक सौंदर्य भी आकर्षक है। एक उदाहरण रौद्ररस का पठनीय है—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट मम करौं अष्ट वसु।
 रुद्रन बोरि समुद्र करौं गन्धर्व सब पसु॥
 बलित अवेर कुबेर बलिहि गहि देउं इन्द्र अब।
 विद्या धरन अधिन करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
 लै करौं दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिल जाय जल।
 सुनि सूरज सूरज उगत ही करौं असुर संसार बल॥ 11-56॥ *कविप्रिया*

केशवदास ने 'कविप्रिया' के सातवें प्रभाव में षट् ऋतु-वर्णन दिया हुआ है। प्रकृति के मनोरम चित्रण के साथ-साथ शिव के समाज का वर्णन भी कर दिया है—वसन्तु ऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है—

शीतल समीर शुभ गंगा के तरंग युत,
 अंबर विहीन वपु वासुकि लसेत है।
 सेवत मधुप गण गजमुख परभृत,
 बोल सुन होत सुखी संत औ असंत है।
 अमल अदल रूपमंजरी सुपद रज,
 रंजित अशोक दुख देखत नसंत है।
 जा के राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन,
 शिव को समाज किधौं केशव बसंत है॥ 7-28॥ *कविप्रिया*

आक्षेपालंकार के प्रसंग में शिक्षा क्षेप का विस्तृत वर्णन किया है। यह वास्तव में बारहमासा वर्णन ही है अथवा इसे भी परम्परागत रूप से षडऋतु-वर्णन ही कहा जा सकता है। सारा शिक्षा क्षेप-प्रसंग श्रृंगाररस से ही समन्वित है। भादों मास के वर्णन में एक ओर तो प्रकृति का वर्षामय रूप चित्रित है और दूसरी ओर श्रृंगाररस का प्रवाह बहता है। वर्णन इस प्रकार से किया गया है कि उसमें अन्ततः शिक्षाक्षेपालंकार का सौन्दर्य भी प्रकट हो जाता है—

घोरत घन चहुं और घोष निर्धोषनि मंडिहिं।
 धाराधर-धरि धरनि मुसलधारनि जल छंडहिं।
 झिल्लीगन झंकार पवन झुकि-झुकि झकझोरत।
 बाघ सिंह गुंजरत पुंज कुंजर तरु तोरत।
 निशि दिन विशेष निःशेष मिटि जात, सु ओली ओड़िये।
 निज देश पियूष विदेश विष भादों भवन न छोड़िये॥ 10-29॥

भाद्रपद मास में घर क्यों नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि इस वर्षा काल में बरसता हुआ जल स्वदेश (अपने घर में) में अमृतवत् और विदेश में विष के समान होता है। शिक्षाक्षेप अलंकार और प्रकृति का पावसमय रूप पाठकों के लिए भाव के स्तर पर मनोहारी रूप में सिद्धि है।

राज दरबार से सम्बद्ध कवि केशव ने जल-क्रीड़ा के चित्र भी चित्रित किये हैं। इन क्रीड़ाओं का शब्दबद्ध स्वरूप दृश्य बिम्ब का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। एक जलक्रीड़ा चित्र पठनीय है—

एक दमयंती ऐसी हरै हँसि हंस बंस।
 एक हंसिनी सी बिसहार किये रोहिये।
 भूषण गिरत एकै लेत बूड़ि बीच बीच।
 मीन गति लीन हीन उपमान टोहिये।
 एकै मत कै कै कंठ लागि बूड़ि बूड़ि जात।
 जल देवता सो दृग देवता विमोहिये।
 केशोदास आसपास भँवर भँवत जल-
 केलि में जलजमुखी जलज सी सोहिये॥ 8-37॥ कविप्रिया॥

केशवदास ने भूमि और राज्य श्री भूषणों में मध्यदेश, ओरछानगर और उसके सर-सरिताओं के साथ ही वहाँ के वैभव का वर्णन भी किया है जो राजा इन्द्रजीत के समय की राज्यस्थिति एवं राज्य वैभव के प्रमाण हैं।

कविवर केशवदास ने न केवल श्रृंगारादि रसों का वर्णन किया है अपितु उनकी दृष्टि अपने काल के सामाजिक जीवन के भीतरी दृश्यों को देखने में भी सशक्त थी। उनकी अन्तरात्मा ने अपने युग में शोषित और शोषक वर्ग के जीवन को भी देखा था। सुसिद्धालंकार के लक्षण में ही केशव ने कितना स्पष्ट कहा है कि जहाँ साधते-साधते तो और लोग मर खप जाते हैं और भोग अन्य लोग करते हैं। ऐसे वर्णन को सुसिद्धालंकार का विषय कहा जाता है—

साधि साधि औरैं मरैं, औरैं भागै सिद्धि।
 तासों कहत सुसिद्ध सब, जिन के बुद्धि समृद्धि॥

इसका मार्मिक उदाहरण भी पठनीय है—

मूलन सों फलफूलन सबै दल जैसी कछू रसरीति चली जू।
भाजन भोजन भूषण भामिनि भौन भरी भव भाँति भली जू।
डासन आसन बास सुवासन वाहन यान विमान थली जू।

केशव जैसे महाजन लोग मरै सचि भोगत भोग वली जू। 13-5॥ *कविप्रिया*॥

इससे अगले पद में केशव ने यह भी कहा है कि 'कहि केशव लेखक लिखि मरहिं-पंडित पढ़ै पुरान गन'। इससे स्पष्ट है कि कवि केशव का ध्यान महाजनों की वृत्ति पर भी गया था और राजा लोगों द्वारा महाजनों के धन को लेकर भोग करने पर भी। केशव ने अपने युग के निर्धन लेखकों को लिखते-लिखते मरते हुए भी देखा होगा तभी पुराणों की बात कहकर अपने युग के शोषकों पर करारी चोट भी की है।

केशवदास ने जीवन में जीते हुए नरक-भोग की चर्चा भी बड़े ही मार्मिक रूप से कही है। इसका अर्थ यही है कि केशव स्वर्ग और नरक का भोग इसी लोक में मानते हैं। नरलोक में नरक क्या है? इसका वर्णन केशव के शब्दों में ही द्रष्टव्य है—

वाहन कुचाल, चोर चाकर, चपल चित्त,
मीत मतिहीन, सूम स्वामी उर आनिये।
पर घर भोजन, निवास वास कुपुरन,
केशोदास वरषा प्रवास दुख दानिये।
पापिन को अंग संग, अंगना अनंग बस,
अपयश जुत सुत, चित्त हि हानिये।
मूढ़ता बुढ़ाई व्याधि, दारिद, झुठाई आधि,
यहई नरक नर लोकन बखानिये।

और इस नरलोक के नरक के विपरीत कवि केशव ने सुधी सपूत और पति प्रेमपरायण पत्नी वाले व्यक्ति के जीवन को यशस्वी कहा है। दानी, मान युक्त, रोगहीन मानव को मुक्ति प्राप्त माना है। इससे केशव की जीवन-दृष्टि का परिचय भी सहज में प्राप्त हो जाता है।

बुढ़ापे का वर्णन केशव ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है। केशों की श्वेतिमा से तो केशव त्रस्त थे ही। उन्हें मृगलोचनियाँ बाबा कहकर चली जाती थीं परन्तु वृद्धावस्था के साथ-साथ आती हुई मृत्यु का भय भी उन्हें भीतर से कचोटता रहता था। वे जरा को मृत्यु का संदेश मानकर उसका वर्णन करते हैं—

विलोकि सिरोरुह सेत समेत, तनूरुह केशव यों गुण गायो।
उठे किधौँ आयु की औँधि के अंकुर, शूल कि सुख समूल नसायो।
लिख्यो किधौँ रूपे के पानी पराजय, रूप को भूप, कुरूप लिखायो।
जरा सर पंजर जीव जर् यौ कि जुरा जर-कंवर सों पहिराया॥ 5-13॥ *कविप्रिया*॥

केशवदास ने चिकने बालों के श्वेत होने से होने वाले कष्ट का वर्णन अन्य दो पदों (5-14, 15) में भी किया है। इससे उनकी वैयक्तिक मानसिक पीड़ा और मृत्यु का संत्रास प्रकट होता है। भाव और कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण यह वर्णन दृश्य और स्पृश्य बिम्ब का एक साथ आकर्षण सौन्दर्य भी प्रकट करता है। जीवन की निःसारता को भी कवि ने खूब समझा था। उसका वर्णन भी अत्यन्त हृदयस्पर्शी है—

हाथी न साथी न घोरे न चरे, न गाँव न गाँव को नाँव विलैहै।
तात न मात, न मित्र न पुत्र न वित्त न अंग हू संग न रहै॥
केशव काम को 'राम' विसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेत रे चेत अजौ चित्त अन्तर अंतक लोक अकेलहि जैहै॥ 6-56॥

केशवदास ने पुत्र का वियोग भी सहन किया होगा अथवा अपने किसी निकटवर्ती इष्ट मित्र के पुत्र की मृत्यु से होने वाली दीन हीन दशा को देखा होगा। ऐसे व्यक्ति का साकार चित्रण कितना प्रभावी हो सकता है। यह केशव के शब्दों में ही अंकित है। लम्बी-लम्बी साँस लेना ही पुत्रशोकी मानव का जीवन क्रम बन गया है। उसका पाप का भोग प्रकट हो गया है। आयु का शेष भाग जीवन में आकाश की भाँति शून्य लगता है। देह-रूप की उसे चिन्ता नहीं। हड्डियों का वह ढाँचा मात्र है। बुद्धि विक्षुब्ध एवं अस्थिर हो गई है। आँखों और बादलों का अन्तर मिट गया है। छाती घड़ियाल की भाँति बजती रहती है। तन से वह घायल है। शरीर जलता जा रहा है। ऐसे व्यक्ति का जीने के लिए हृदय वज्र सा हो जाता है—

केशोदास दीरघ उसासन को सदा गति,
आयु को अकास है, प्रकास पाप भोगी को।
देह जात, रूपजात, हाडन को पूरो रूप,
रूप को रूपक विधु वाहर संयोगी को।
बुद्धिन की बीजुरी है, नैनन को धाराधर,
छाती धर्यार, तन घायल प्रयोगी को।
उदर बाड़वा अगिन गेह मानत हों,
जानते हो हीरा हियो काहू पुत्र सोगी को॥ 6-22॥ *कविप्रिया*।

भाव-चित्रण के इन विभिन्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि केशवदास ने अपने युग की शृंगारात्मक प्रवृत्ति का निर्वाह तो अपने काव्य में किया था। उनके शृंगार वर्णन में संयत के साथ-साथ असंयत वर्णन भी अवश्य मिलते हैं परन्तु केवल असंयत ही नहीं हैं। शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का वर्णन भी भावों की सुषमा के साथ शब्दबद्ध है। जीवन को खुली आँखों से देखकर सामान्यजन की शोषित स्थितियों का वर्णन भी केशवदास ने किया है। इसे ही आज की भाषा में जीवन से जुड़कर लिखना कहा जाता है। नरक स्वर्ग के नर-लोक-गत वर्णन भी ऐसे ही मर्मस्पर्शी हैं। मृत्यु-संत्रास एवं जरा की स्थिति का चित्रण भी केशवदास की मानसिक अवस्था के परिचायक हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केशवदास ने जीवन के विविध पक्षों से संवलित भावों को अभिव्यक्त किया है। उनका अनुभव बहुमुखी था, सर्वथा एकांगी नहीं था। राजन्य वर्ग तथा साधारण जन-समाज को उन्होंने जहाँ तक देखा समझा और परखा था, उसका वर्णन अपने काव्य-आदर्शों के अनुकूल उन्होंने किया है।

काव्यगत भावों की सफल अभिव्यक्ति भाषा की सहजता और सरसता पर निर्भर करती है। भाषा की भावों और विचारों को साकार करती है। इस दृष्टि से केशव के काव्य को पहचानना ही उचित है। वैसे तो केशवदास उस कुल में जन्मे थे जिसके दास भी संस्कृतभाषी थे परन्तु केशवदास ने 'भाषा' को ही काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उन्होंने लोकभाषा या ब्रजभाषा में अपना साहित्य लेखन आरम्भ किया। संभवतः तब भाषा में काव्य लिखना साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक माँग का परिणाम था। केशव ने कुल-परम्परा त्याग कर 'भाषा कवि' और भाषा का काव्यशास्त्रीय आचार्य शिक्षक बनना स्वीकार किया।

केशवदास ने तुलसी द्वारा संस्कारित भाषा अवधी को न अपनाकर बुन्देलखण्डी की सहचारिणी भाषा ब्रज को अपना लिया, उसमें ही तब के बहुसंख्यक कवि लिख रहे थे। इसलिए केशवदास ब्रजभाषा के समर्थ कवि बनने की राह पर आरूढ़ हुए।

केशव संस्कृतज्ञ थे। इसलिए न चाहने पर भी उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग हो जाता था। 'रामचन्द्रिका' की भाषा में तत्सम बहुलता है। केशव के श्लेषालंकार प्रयोगों में भी संस्कृति के शब्दों की बहुलता है। कहीं-कहीं तो संस्कृत की विभक्तियों का प्रयोग भी यथावत किया गया है। 'उरसि अंगद लाज कछु गहों एवं अनन्ता सब सर्वदा शस्ययुक्ता' आदि में संस्कृत विभक्तियों का प्रयोग स्पष्ट दिखता है।

उस युग जीवन में अरबी-फारसी के शब्द प्रयुक्त होते जा रहे थे। इसलिए उनका काव्य में प्रयोग करना भी कवियों के लिए बोध की दृष्टि से सहज था। केशवदास ने अरबी-फारसी की विभक्तियों को तो नहीं अपनाया परन्तु संज्ञाओं, सर्वनामों को विशेषणों को ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार अपना लिया। कविप्रिया में 'सुनत सुवण बकसीम एक ईस की', 'शेरशाह बसलेय के उर सालौ समसेर' तथा 'चरण धरत चिन्ता करता नींद न आवत शोर' (पृ. 5, 6, 23) आदि उक्तियों में बकसीस, समसेर और शोर पद ऐसे ही प्रयोग हैं।

ब्रजभाषा के कवियों ने अन्त्यानुप्रास का अवलम्बन सर्वथा लिया है। शब्दों के रूप परिवर्तित करके भी वे अन्त्यानुप्रास के प्रति आग्रही कवि माने जाते हैं। बालकला, घालकता, जेय, लेप जैसे शब्द इसी प्रवृत्ति के हैं। 'अति कोमल केशव बालकता। बहु दुस्कर राकस घालकता' जैसे-पदों में ऐसी प्रयोग-प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के काव्य में लक्षणा शक्ति का प्रभाव प्रकट होता है। व्यंजना शक्ति भी कभी-कभी साकार हो जाती है। केशव के काव्य में इन मुहावरों का प्रयोग बहुधा हुआ है जो उनके बुन्देलखण्डी क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। 'आग को तो दाध्यो अंग आग ही सिरातु है' एवं 'प्यास बुझाई न ओस के चाटे' में मुहावरों में अर्थगत सौन्दर्य परिलक्षित होता है। भाषा की सांकेतिक शक्ति से भी केशव परिचित थे। संभवतः उसका कारण उनका संस्कृत साहित्य-ज्ञान था। वे भाषा की सामासिकता से भी परिचित थे। इसलिए सांकेतिकता के प्रयोग भी केशव ने अपने काव्य में किये हैं। 'कविप्रिया' में लव-कुश के आखेट का वर्णन इस संबंध में उदाहरणतया प्रस्तुत है—

खलक में खेल भैल मनमथ मन ऐल,
 शैलजा के शैल गैल गैल प्रति रोक है।
 सेनानी के सरपट, चन्द्र चित चरपट,
 अति अति अटपट अंतक के ओक है।
 इन्द्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक,
 शंभू जू के सकपक केशोदास को कहै।
 जब जब मृगया को राम के कुमारे चढ़ै,

तब तब कोलाहल होत लोक लोक है॥ 8-35॥ कविप्रिया॥

शब्दों में ध्वन्यात्मकता और सांकेतिक दोनों ही गुण यहाँ स्पष्ट हैं। माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों के उदाहरणों की किसी प्रकार की कमी केशव के काव्य में नहीं है। 'मेह कि हैं सखि आँसू उसासिन साथ निसा सुविसा सिनि बाढ़ी में माधुर्य' एवं 'बौरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाज सरत्थहि' में

ओजगुण साकार हो जाता है। प्रसाद गुण तो सर्वरसगामी माना जाता है। तथापि 'शोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई' जैसी पंक्तियाँ प्रसादगुण का उदाहरण मानी जाती हैं।

इन उदाहरणों से केशवदास की काव्यभाषा का सौन्दर्य स्वतः प्रभासित है। केशव काव्य की भाषा के संबंध में स्वर्गीय डॉ. श्यामसुन्दर दास के मत को उद्धृत करना अधिक उचित लगता है। उन्होंने स्वसंपादित 'रामचन्द्रिका' की भूमिका में लिखा है कि 'जो लोग हिन्दी भाषा को भाषा ही नहीं समझते और कहते हैं कि हिन्दी के शब्दों में मनोभाव प्रकट करने की शक्ति बहुत ही अल्प है, उनसे हमारा निवेदन है कि वे केशव के ग्रंथ पढ़ें और देखें कि इस भाषा में क्या चमत्कार है। जिसे अपनी भाषा की समृद्धि और सम्पूर्णता का अहंकार हो वह उस भाषा का सर्वोत्तम छंद लेकर केशव के चुनिंदा छंदों से मिलान करे तो मालूम हो जायेगा कि उसकी भाषा हिन्दी भाषा के सामने तुच्छातितुच्छ है। क्या किसी भाषा का कवि अपने किसी छंद के चार-चार और पाँच-पाँच तरह के शब्दार्थ लगा सकता है। केशव की कविता में ऐसे छंद बहुत हैं जिनका अर्थ दो-तीन तरह से होता है। इतना ही नहीं कुछ छंद ऐसे भी हैं, जिनका शब्दार्थ पाँच-पाँच तरह का होता है। इसी कठिनता के कारण कुछ लोग केशव की कविता को कम पढ़ते हैं। हमारी यह धारणा है कि केशव ने हिन्दी को महान गौरव प्रदान किया है। जिस प्रकार तुलसी अपनी सरलता और सूर अपनी गम्भीरता के हेतु सराहनीय हैं, वैसे ही वरन् उससे भी बढ़कर केशव अपनी भाषा परिपुष्टता के लिए प्रशंसनीय हैं'।

काव्य भाषा की संरचना में छंदों और अलंकारों का योग भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। छंद लयात्मकता जीवित रखते हैं। भावों को पाठक के स्मृति-पटल पर अंकित करने के प्रबल साधन हैं। केशव के काव्य में परम्परागत छंद तो प्रयुक्त हैं ही उन्होंने कई नए छंद भी प्रयुक्त किये हैं जिनकी प्रकृति 'भाषा काव्य' के अनुकूल रही है। 'चौबोला', 'जयकरी' का प्रयोग केशव ने अत्यन्त निपुणता से किया है। छंद-दोष भी उनके काव्य में दृष्टिगत होते हैं। उनके स्वकथित 'पंगु' और 'यतिभंग' दोष कहीं-कहीं उनके काव्य में ही दिख जाते हैं। 'शोक समुद्र न बुड़ाई' में एक मात्रा अधिक है। केशवकाव्य में बहुधा छंददोष नहीं है। रस-भावानुकूल ही केशव ने छंदों का प्रयोग करके भाषा की प्रवाहात्मकता को तीव्रता प्रदान की है।

अलंकार चमत्कार में तो केशव सिद्धहस्त कवि-आचार्य हैं। सामान्य और विशेष अलंकार वर्गों के उदाहरणों में उनका अलंकार प्रयोग का चमत्कार सर्वत्र दृष्टिगत होता है। श्लेषालंकार का ऐसा सफल निर्वाहक कवि न केवल उस युग में अपितु आज भी दूसरा दिखाई नहीं देता है। रसात्मकता भी केशवकाव्य की स्वतः सिद्ध है। शृंगार के बहुसंख्यक उदाहरण तो प्रबंध और मुक्तक काव्य में प्राप्त हैं। अन्य रसों के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। हास्य रस के उदाहरण अवश्य ही पूर्ण सफल नहीं परन्तु अन्य रसों में भावोद्रेकता चरमसीमा को स्पर्श करती है।

आज की नई समीक्षा के अनेक माप-दण्डों अथवा प्रणालियों से केशवकाव्य की समीक्षा करना अधिक समीचीन नहीं, तथापि बिम्ब योजना की दृष्टि से देखा जाए तो केशव का काव्य-बिम्बों का अद्भुत कोश है। इसमें दृश्य बिम्ब तो असंख्य हैं, परन्तु स्पृश्य, घ्रातव्य, रस्य बिम्बों की भी कमी नहीं है। गत पृष्ठों में यथास्थान कतिपय बिम्बों का उल्लेख किया जा चुका है।

केशव-काव्य को पढ़कर लगता है कि उस महाकवि ने अपने युग के राजन्य जीवन को शब्दबद्ध किया है। इसके साथ ही उनके व्यक्तिगत जीवन के कई पक्षों का स्पर्श भावों के वर्णन में सहजता से हुआ

है। सामान्य जीवन के चित्र भी चित्रित हैं। मनोविज्ञान के आधार पर भी केशव का काव्य आकर्षक है और कला-सृष्टि की दृष्टि से केशव काव्य कठिन होने पर अपनी रसात्मकता, लयात्मकता और चमत्कारात्मकता के कारण सहृदय ग्राह्य है।

प्रश्न

1. कविप्रिया के संदर्भ में आचार्य केशवदास के आचार्यत्व का विवेचन कीजिए।
2. अलंकार-परम्परा में कविप्रिया का स्थान निर्धारित कीजिए।
3. 'कविप्रिया' के आधार पर सिद्ध कीजिए कि आचार्य केशवदास को अलंकारवादी कहना अधिक संगत है या रसवादी।
4. आचार्य केशवदास के अलंकार-विवेचन पर संस्कृत काव्यशास्त्र के किन-किन आचार्यों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। संक्षेपतः विवेचन कीजिए।
5. आचार्य केशवदास की काव्यकला का सप्रमाण निरूपण कीजिए।

अध्ययन के लिए संदर्भ ग्रंथ

1. *आचार्य केशवदास*—डॉ. हीरालाल दीक्षित, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
2. *कविप्रिया*—लाला भगवानदीन-कल्याण दास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी।
3. *केशव की काव्यकला*—आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल—साहित्य ग्रंथमाला कार्यालय, पुस्तक सदन, ज्ञानवापी, वाराणसी।
4. *केशवदास-जीवनी कला और कृतित्व*—डॉ. किरणचन्द्र शर्मा, एस. चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली।

कवि देव : रस विलास

आचार्य देव : एक परिचय

डॉ. वीना

(क) रस विलास का प्रतिपाद्य और देव का आचार्यत्व

हिन्दी के प्राचीन कवियों में सूर तथा तुलसी के विषय में कोई मतभेद नहीं है। सभी साहित्यकार एवं विचारक इन्हें साहित्याकाश का सूर्य और चंद्रमा मानते हैं। परम्परा में जब प्रश्न उपस्थित हुआ कि उस आकाश में अन्य कवियों का क्या स्थान है तो केशवदास का नाम जोड़ा गया। वास्तव में प्रवाह में आने वाले प्रत्येक रचनाकार का महत्त्व है—उसका योगदान का, उसकी उपलब्धि का, उसके स्वयं के प्रभावित होने तथा प्रभावित करने का। इस दृष्टि से यदि देखें तो देव का काव्य प्रारंभ से ही आदृत होता रहा है। देव के समकालीन कवियों ने 'सत्कवि' के रूप में इनकी प्रशंसा की तथा परवर्ती कवियों ने 'सत्काव्य' के उदाहरण रूप में इनके छंदों को संकलित एवं उद्धृत करते हुए इन्हें सम्मान दिया है। आचार्य दास से लेकर भारतेन्दु हरिश्चंद्र तक सभी ने देव की प्रतिभा की महत्त्वपूर्ण स्वीकृति दी है। यहाँ तक कि देव को बिहारी से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास भी किया गया अर्थात् विद्वानों एवं समीक्षकों ने देव के काव्य को लोकप्रिय भी माना और प्रभावशाली भी।

देव के अपने साक्ष्य के अनुसार इनका जन्म इटावा (उत्तर प्रदेश) के द्योसरिया ब्राह्मण-परिवार में 1673 ई. में हुआ था। अपने जीवन काल में देव कई आश्रयदाताओं के आश्रय में रहे किंतु गुणग्राहक राजा या आश्रय की तलाश में वे देशव्यापी यात्राएँ करते रहे। देव के प्रथम आश्रयदाता आजमशाह थे और अंतिम पिहानी के अधिपति अली अकबर खाँ। इन सभी में से देव की प्रतिभा और कला का समुचित आदर किया भोगीलाल ने। देव ने भी सबसे अधिक प्रशंसा की अपने इसी आश्रयदाता की।

रचनाएँ

कवि देव द्वारा रचित 52 या 72 ग्रंथ बताए जाते हैं किंतु आज इनमें से 18 ग्रंथ उपलब्ध हैं—भाव विलास, अष्टयाम, भवानीविलास, रसविलास, प्रेमचन्द्रिका, राग रत्नाकर, सुजान विनोद, जगद्दर्शनपचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, तत्त्वदर्शन पचीसी, प्रेमपचीसी, शब्दरसासन, सुखसागर तरंग, प्रेमतरंग, कुशलविलास, जाति विलास, देवचरित एवं देवमाया प्रपंच। इनमें से भावविलास को उनका प्रथम ग्रंथ माना गया है। देव रीतिकवि हैं। इसलिए उनके काव्य में रीतिकाल की दो मुख्य प्रवृत्तियाँ रीतिनिरूपण एवं शृंगारिकता स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनके अतिरिक्त वैराग्य की प्रवृत्ति भी स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

देव की रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि अपने समकालीन कवियों की भाँति इनकी प्रवृत्ति शृंगारिक थी किंतु उसमें कोरी रसिकता नहीं थी। प्रेम के प्रति गंभीर निष्ठा भी विद्यमान थी। स्वकीया के प्रेम की स्वीकृति एवं सामान्या की अस्वीकृति इसका प्रमाण है। प्रेम एवं विषय का भेद उन्हें पूर्णतया स्पष्ट था। स्पष्टता, सुबोधता, संक्षिप्तता एवं सरसता उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। प्रतिभा के धनी देव व्यापक अध्ययन एवं जीवन के अनुभवों से भी संपन्न थे जिसके चिह्न उनके ग्रंथों में स्पष्टतः देखे जा सकते हैं—

रसविलास का प्रतिपाद्य

देव रीतिकाल के उन आचार्य कवियों में हैं जिन्होंने काव्य के सर्वांग का विवेचन किया है। किंतु इनका प्रिय विषय शृंगार रस और उसमें भी प्रिय नायिकाभेद विवेचन रहा है। भावविलास, भवानीविलास, कुशलविलास, प्रेमतरंग, सुजानविनोद, सुखसागरतरंग सभी में प्रकारांतर से इसी का वर्णन है। रसविलास भी नायिका भेद को अपना वर्ण्यविषय बनाता है। देव के अनुसार इसका निर्माण विजयादशमी संवत् 1783 वि. में हुआ था—

संवत् सत्रह से बरष और तिरासी जान।

रसविलास दसमी विजय पूरन सफल कलान॥

(रसविलास 8.94)

रसविलास को जातिविलास का 'संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण'¹ भी कहा गया है। जातिविलास और भवानीविलास की अपेक्षा इसमें इतने कम नवीन छंद हैं कि उनकी रचना में कवि को बहुत ही थोड़ा समय लगा होगा। यह ग्रंथ देव ने अपने आश्रयदाता भोगीलाल को समर्पित किया है। भोगीलाल गुणग्राहक धनिक थे जिनकी काव्य में गहरी रुचि थी। वे शायद कोई शासक राजा नहीं थे। राजा या तो उनका खिताब था या देव ने उनकी कृतज्ञता एवं भक्तिभावनावश उन्हें भूप लिख दिया है।² देव ने अपने सभी आश्रयदाताओं में से भोगीलाल की सर्वाधिक प्रशंसा भी की है—

भूलि गयौ भोज, बाल विक्रम बिसरि गये,
जाके आगे और तन दौरत न दीदे हैं।
राजा, राइ, राने उमराइ, उनमाने,
उन माने निज गुन के गरव गिरंबी-दे हैं॥
सुयस बजाज जाके, सौदागर सुकवि,
चले हूँ आवै दसहू दिसान के उनीदे हैं।
भोगीलाल भूप लख, पारवर लिवैया जिन,
लाखनि खरचि खरचि आखर खरीदे हैं।

(रसविलास 1-3)

देव सुकवि तातें तजें, राइ, रान सुलतान।
रसविलास सुनि रीझिहैं भोगीलाल सुजान॥

(रसविलास 1-5)

रसविलास में 7 विलास हैं जिनमें नायिका-भेद का सविस्तार विवेचन है। ग्रंथ के प्रारंभ में ही नायिका अर्थात् नारी के महत्त्व का प्रतिपादन है—

युक्ति सराही मुक्ति हित मुक्ति भुक्ति को धाम।
युक्ति मुक्ति अरु भुक्ति को मूल सु कहिए काम॥ (1-9)

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 52

² वही, पृ. 23

रमनी राका ससी मुखी पूरै काम समुद्र।
बिना बाम पूरन भये लगै परमपर छूद्र॥ (1-10)

ताते त्रिभुवन सुर असुर नर पशु कीट पतंग।
राक्षस जक्ष पिशाच अहि सुखी सबै तिय संग॥ (1-11)

प्रथम विलास में कामिनी (नायिका) के छः भेद गिनाए गए हैं—
सो नारी कहू नागरी, पुस्बासिनि ग्रामीन।
बन सयना अरु पथिकतिय, षट बिधि कहत प्रवीन॥

अर्थात् नागरी, पुनवासिनी, वनवासिनी, सेन्या और पथिकवधू। तत्पश्चात् नागरी के तीन उपभेदों की चर्चा है—देवल, रावल और राजपुर।

देवल रावल राजपुर, नागरी तरुनि निवास।
तिनके लक्षण भेद सब, बरनत जाति विलास॥

इनमें से देवल के पुनः तीन अवान्तर भेद किए गए हैं— देवी, पूजनहारी और द्वारपालिका। रावल के चार अवान्तर भेदों की चर्चा भी इसी विलास का वर्ण्य विषय है— राजकुमारी, धाय, दूती और सखी। दूती रूपिणी कामिनियों के छः रूपों की चर्चा यहाँ मिलती है— धाई, नाइन, दासी, नटी, ग्वालिन, शिल्पिनी। यहाँ देव की विस्तारप्रिय प्रवृत्ति खूब रमी है और उसी का परिणाम दिखाई देता है शिल्पिनी के सात अवान्तर भेदों में मालिन, नाइन, बालिका, वस्त्रविक्रेता स्त्री, संन्यासिनी, भिखारिणी और संबन्धिनी। सखी रूपिणी कामिनियों के तीन रूपों बन्धुसुता, विप्रसुता और कुलगुरुसुता के उपरांत नागरी के उपभेद रावल के भेदोपभेदों की चर्चा पूर्ण होती है।

द्वितीय विलास में नागरी के तीसरे उपभेद राजपुर के तेरह अवान्तर भेदों की चर्चा मिलती है—

राजनगर नागरि बिबिध, बरनत सुकबि सँभारि।
एक हटबई की बहू, दूजी गनिका नारि॥ (2-2)

जौहरिनी, छीपनि कहौं, परवनि और सुनारि।
गन्धिनि, तेलनि, तमोरिनी, किन्दुनि, बनिनी, कुम्हारि॥

दरजिनि आदि अनेक लघु, जाति चूहरी अन्त।
नगर द्वार गनिका बसैं, सो चाहैं थनवन्त॥ (2-6, 7)

तृतीय विलास में कामिनी के दूसरे भेद पुनवासिनी नायिका को जात्याधारित दस उपभेदों में विभक्त किया गया है—ब्राह्मणी, क्षत्राणी, राजपूतानी, वैश्यानी, कायथिनि, सूद्राणी, नाइनि, मालिनि और धोबिनि।

पुर कहियै छोटौ नगर, राजनगर कौ तीर।
अपने-अपने धर्म मैं, चारि बरन कौ भीर॥

तहाँ बिप्र, क्षत्री, बनिक, कायस्थ कुल और सूद्र।
नाऊ, माली, रजक ए, पुरबानी निरहुद्र॥

पुनबासिनी तिनकी तिया, कुल आचार-बिचार।
लिये धर्म सुभ-कर्मपन, लाज काज त्यौहार॥ (3-2, 3, 4)

इसी विलास में कामिनी के तीसरे भेद ग्रामीण के पाँच अवान्तर भेदों की चर्चा है—अहीरिन, काछिन, कलारिन, कहारिन और नूनेरी—

अहीरिन अरु काछिनि कहौं, नारि कलारि कहारि।

नूनेरी अरु पाँच बिधि, बरनहु नारि गँवारि॥ (3-18)

कामिनी का चौथा रूप वनवासिनी अपने तीन अवान्तर भेदों सहित इसी विलास में स्थान प्राप्त करता है—मुनिपत्नी, व्याधपत्नी और भीलनी—

बन्या बनबासिनी बहू, ताहू त्रिविध बरवानि।

मुनि त्रिय अरु त्रिय व्याध की, और भीलिनी जानि॥ (3-24)

पाँचवीं कामिनी सेन्या भी उपभेदों सहित इसी विलास में उपस्थित है—वृकली, वेश्या और मुकेरिन—

कटक बसै ते सेनया, तीनि भाँति कहि ताहि।

इक वृषली, वेश्या द्वितिय, त्रितिय मुकेरिनि जाहि॥ (3-28)

अंतिम अर्थात् छठे कामिनी—रूप पथिक बधू के चार अवान्तर भेदों की चर्चा भी इसी विलास का विषय है—बनजारिन, जोगिन, नटी और कंधेरिन—

सदा बसै जे पन्थ मैं, पथिक बधू ते जानि।

बनजारिनि, जोगिनि, नटी, कंधेरिनि सुख खानि॥ (3-32)

चतुर्थ विलास कामिनी—महिमा से प्रारंभ होता है—

काम अन्धकारी जगत, लखै न रूप कुरूप।

हाथ जिये डोलत फिरै, कामिनी धरी अनूप॥ (4-2)

तातैं कामिनी एकहीं, कहन सुनन को भेद।

राचैं पागैं प्रेमरस, मेटैं मन के खेद॥ (4-3)

इसके उपरांत नायिका के यौवन, रूप, गुण, शील आदि आठों अंगों का सूक्ष्म वर्णन है। इन अमूर्त गुणों की परिभाषा करने का देव ने जो प्रयास किया है वह प्रशंसनीय है इसी विलास के अंत में देव ने स्वीकार किया है कि नायिका भेद वर्णन की चर्चा वे पहले भी कर चुके हैं—

एक बार जद्यपि कही, मति प्राचीन प्रकास।

भाव सहित सिंगार रस, रचिकै भावविलास॥

रसबिलास रचि ग्रन्थ सौं, कहत दूसरी बार।

वही नायिका भेद सब, सुनहु नवीन प्रकार॥ (4-40, 41)

पंचम विलास में जाति के आधार पर पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी नायिकाओं का सोदाहरण विवेचन है—

पद्मिनी, चित्रिनि, संखिनी, हस्तिनी कहौं बिचारि।

जाति भेद यहि भाँति सौ, कही नायिका चारि॥ (5-4)

इसी विलास में कर्म के आधार पर स्वकीया, परकीया और सामान्या नायिकाओं की चर्चा है—

कर्मभेद करि नायिका, तीनि प्रकार बखानि।

सुकिया, परकीया कहूं, अरु सामान्या जाति॥ (5-13)

गुण के आधार पर सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण भेदों के विवेचन के साथ ही ये तीनों भेद प्रकृति आधार पर तीन उपभेदों—उत्तम, मध्यम और अधम—सहित इसी विलास के वर्ण्य-विषय रहे हैं—

कहाँ सत्त, रज, तम, त्रिगुन, उत्तम मद्धिम अन्त।

तीनि भाँति गुन भेद करि, कहत नायिका सन्त॥

सत्त प्रकृति उत्तम कह्यौ, मध्यम रजस सुभाइ।

अन्त तमोगुन प्रकृति तिय, बरनत कवि समुदाइ॥

(4-20, 21)

इसी विलास में देश-भेद के आधार पर मध्यदेशवधू, मगधवधू, कौशलवधू, पाटलवधू, उत्कलवधू आदि नायिका के 27 भेदों की चर्चा की है।

षष्ठ विलास में कालभेद के आधार पर नायिकाओं के आठ भेदों का सोदाहरण कथन है—

प्रथम कहौं स्वाधीनपति, कलहन्तरिता होइ।

अभिसारिका बखानिये, विप्रलब्धिका सोइ॥

खण्डिता अरु उत्कण्ठिता, वासकसज्जा बाम।

प्रोषितपतिका नायिका, आठौं बिधि अभिराम॥

(6-3, 4)

किंतु नवम् भेद की चर्चा देव की अपनी खोज है—

नारि प्रबत्सतभर्तिका, नवमी कहत बखानि।

कालभेद नौ बिधि कहत, एकदेस मत मानि॥

(65-21)

नवम् के साथ दशम् भेद का कथन भी द्रष्टव्य है—

आगमपतिका त्यों सुन्यो, दसमी कहत बिचारि॥

(6-23)

इसी विलास में वयःक्रम के भेद से मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा का विवेचन है—

बाल वयःक्रम भेद की, तीनि भाँति कै होइ।

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, बरनतहैं सब कोई॥

(6-25)

इसके पश्चात् प्रकृति के आधार पर तीन भेदों— वात, पित्त और कफ— की चर्चा है—

प्रकृति भेद करि नायिका, त्रिबिध कहत कबि लोय।

तातैं सो कफ पित्त अरु, बात प्रकृति तिय होय॥

(6-38)

सत्त्व भेद के आधार पर नौ प्रकार की नायिकाओं का कथन भी इसी विलास के अंतर्गत हुआ है—

सुर किन्नर अरु जक्ष नर, कहि पिसाच अरु नाग।

सत्त्व भेद सो नायिका, बरनहुँ खर कपि काज॥

(6-45)

सातवें विलास में संयोग के अंतर्गत नायिका के दस हावों और वियोग के अंतर्गत दस कामदशाओं का वर्णन है। वियोगजन्य इन दस अवस्थाओं के देव ने कई अवान्तरभेद भी प्रस्तुत किए हैं।

‘लक्ष्मीधर मालवीय’ के देवग्रंथावली के प्रथम खण्ड में रसविलास के अष्टम विलास को स्थान मिला है। लेखक के विचारानुसार—“कदाचित् इस ग्रंथ की रचना पूर्ण हो चुकने पर सुल्तानपुर के राजा श्री भोगीलाल से देव की भेंट हुई थी। इस समय उनके पास एक ‘रस-विलास’ ही ऐसा ग्रंथ जिसे भोगीलाल को समर्पित कर सकते थे। परंतु देव सर्वदा अपने पूर्व रचित ग्रंथ की पर्याप्त आकार वृद्धि कर तब उसे आश्रयदाता को समर्पित करते आए हैं। ‘प्रेमतरंग’ एवं ‘कुशलविलास’ ‘सुखसागर तरंग’ के दो संस्करणों एवं ‘सुजान विनोद’ की ऐसी ही आकार वृद्धि से यह मान्यता पुष्ट होती है। तदनुसार देव ने ग्रंथ के प्रथम

विलास में भोगीलाल संबंधी 'भूलि गए भोज बीर विक्रम बिसरि गए' जैसे छंद सम्मिलित कर, प्रत्येक विलास के आरंभ में आए 'रानी राधा हरि समिरि' दोहों के स्थान पर (जिनसे आश्रयदाता के प्रति कवि की यदि अवज्ञा नहीं तो उदासीनता प्रकट होने का भ्रम हो सकता था।) उसके पहले वाले विकास के अंत में भोगीलाल के नामोल्लेख सहित एक छंद सम्मिलित किया है एवं ग्रंथ के अंत में नायिकाओं के प्राचीन शास्त्रीय विभाजन कर 94 छंदों का एक संपूर्ण अष्टम विलास जोड़कर यह ग्रंथ भोगीलाल को समर्पित किया।¹

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'रसविलास' रस का नहीं नायिका भेद विवेचन का ग्रंथ है जिसमें वर्णनात्मकता तो है किंतु देव का निष्कर्ष यही है—

तातें कामिनी एक ही कहन सुनन को भेद
राचैं पागे प्रेम-रस मेटैं मन के खेद॥

देव का आचार्यत्व

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आचार्यों के सामान्यतः तीन वर्ग हैं—सर्वप्रथम मौलिक उद्भावनाकार आचार्य, जिन्हें हम शास्त्राकार कह सकते हैं जैसे—भरत, वामन, आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त आदि। द्वितीय वर्ग के अंतर्गत व्याख्याता आचार्य आते हैं जो नए सिद्धांतों की उद्भावना नहीं करते अपितु प्राचीन सिद्धांतों का आख्यान करते हैं जैसे—मम्मट, विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ आदि। तृतीय वर्ग के अंतर्गत आते हैं कविशिक्षक, जो अपने स्वच्छ व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर सरस एवं सुबोध पाठ्यग्रंथ प्रस्तुत करते हैं जैसे—जयदेव, अप्पयदीक्षित, केशव मिश्र एवं भानुदत्त आदि। हिन्दी के रीति आचार्य तृतीय वर्ग के अंतर्गत स्थान पाते हैं। विवेचन-विषय तथा विवेचन शैली की दृष्टि से रीति आचार्यों के भी तीन वर्ग मिलते हैं—सर्वांग निरूपक आचार्य, शृंगार रस निरूपक आचार्य तथा अलंकारनिरूपक आचार्य।

देव ने काव्य के सर्वांग का विवेचन किया है इसलिए उन्हें सर्वांग निरूपक रीति आचार्यों के वर्ग में स्थान दिया जाता है। दोषों को छोड़कर काव्य के प्रायः सभी अंगों का विवेचन इनके ग्रंथों में मिलता है। 'भावविलास' और 'शब्द रसायन' इनके प्रमुख रीति ग्रंथ हैं। 'शब्द रसायन' और 'भवानीविलास' में सभी रसों का पूर्ण विवेचन मिलता है 'भावविलास' में केवल शृंगार का विवेचन है। इनके अतिरिक्त 'भावविलास', 'भवानीविलास', 'रसविलास', 'कुशलविलास', 'सुजानविनोद' एवं 'सुखसागर तरंग' में नायिका भेद का विस्तारपूर्वक विवेचन है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से 'भावविलास' एवं 'शब्दरसायन' महत्त्वपूर्ण हैं। 'शब्दरसायन' में शब्दशक्ति, गुण-रीति एवं पिंगल का कथन भी है। काव्य की आत्मा, काव्यशरीर एवं काव्य प्रयोजन आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर भी देव ने अपने मत को प्रस्तुत किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि काव्य के सर्वांग का विवेचन करने का श्रेय यद्यपि देव को मिलता है किंतु शृंगार-रस एवं नायिका भेद का विवेचन करने में उनकी प्रवृत्ति अधिक रमी है।

सर्वांग विवेचक रीति आचार्य देव ने रस की परिभाषा इस प्रकार दी है—

जो विभाव अनुभाव अरु, विभचारिनु करि होइ।

थिति की पूरन वासना, सुकवि कहत रस सोइ॥ (भावविलास 3-1)

¹ देव ग्रंथावली, लक्ष्मीधर वाष्णोय, पृ. 168

इस परिभाषा में देव ने 'वासना' शब्द का प्रयोग किया है जिसका स्पष्टीकरण डॉ. नगेन्द्र ने इन शब्दों में किया है—“यहाँ वासना शब्द के प्रयोग में 'भाव स्मरणं रसः' अर्थात् भाव का स्मरण या स्मृत अनुभव रस है—इस प्रसिद्ध लक्षण की ओर संकेत है और दूसरे रस-परिपाक की आधाररूपिणी वासना की महत्त्व स्वीकृति भी है।”¹

इसी प्रसंग में रस-परिपाक जैसे विषय का विवेचन करते हुए देव ने पात्र के हृदय क्षेत्र को रस का आधार स्थान माना है जिसमें स्थायी भाव बीज रूप है और जो संस्कार के रूप में चित्त में अवस्थित रहता है। जब इसे स्नेह का सलिल मिलता है तब वह अंकुरित, पुष्पित और फलित होता हुआ रूप में परिणत हो जाता है—

खेत पात्र, प्रारब्ध विधि, बीज सुअंकुर जोग।

सलिल नेह, भाव सुविटप, छंद पत्र परिभोग॥ (शब्द-रसायन)

विभाव, अनुभाव और संचारी की स्थिति को भी उन्होंने स्पष्ट किया है—

रस अंकुर भाई, विभाव रस के उपजावन।

रस-अनुभव अनुभाव, सात्विकी रस झलकावन॥ (शब्द-रसायन)

रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए देव ने उसे आनंदमय एवं ब्रह्मानंद सहोदर माना है—

अरथ धर्म ते होइ अरु काम अरथ ते जानु।

ताते सुख, सुख को सादा, रस शृंगार निदानु॥ (भावविलास 1-2)

रस की संख्या देव ने काव्य में नौ तथा नाटक में आठ मानी है। रस के उन्होंने दो भेद दिए हैं—लौकिक और अलौकिक। देव का आधारग्रंथ भानुदत्त की रसतरंगिणी है संभवतः इसलिए उन्होंने अलौकिक के तीन भेद—स्वापनिक, मानोरथिक और औपनायिक की चर्चा तो की है किंतु इनके लक्षण नहीं दिए केवल उदाहरण ही प्रस्तुत किए हैं। लौकिक रस को भी देव ने दो भेदों में प्रस्तुत किया है—संयोग और वियोग। यहाँ देव केशव से प्रभावित होकर इन दोनों के प्रच्छन्न और प्रकाश-पुनः दो भेद कर देते हैं। वियोग शृंगार के प्रसंग में देव ने पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणात्मक वियोग का वर्णन किया है, जिनमें से अंतिम के विषय में उनकी मान्यता है कि—

दम्पतीन में एक के, विषम मूरछा होइ।

जहँ अति आकुल, दूसरौ, करुणात्म कहि सोई॥ (भावविलास 2-77)

रस के पारस्परिक संबंध के विषय में भी देव की तीन स्थापनाएँ उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रथम स्थापना के अनुसार मुख्य रस केवल चार हैं—

होत हास्य सिंगार ते, करुण रौद्र ते जानु।

वीर जनित अद्भुत कहो, बीभत्स ते भयानु॥ (शब्द रसायन)

दूसरी स्थापना के अनुसार मुख्य रस तीन हैं—शृंगार, वीर और शांत तथा शेष छः रस इन्हीं के आश्रित हैं—

तीन मुख्य नौ ह रसनि द्वै द्वै प्रथम निलीन।

प्रथम मुख्य तिन तिनहुँ मैं, दोउ तेहि आधीन॥

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 136

हास्य भयरू सिंगार संग रौद्र करण संग बीर।

अद्भुत अरु बीभत्स संग शान्तहिं बरनत धीर॥

(भवानीविलास)

तीसरी स्थापना के अनुसार शृंगार के दो भेद हैं—संयोग और वियोग। इनमें संयोग हास्य, वीर और अद्भुत का अंतर्भाव कर लेता है, वियोग, रौद्र, करुण और भयानक का तथा वीभत्स एवं शांति दोनों में अंतर्भूत हो सकते हैं। इस प्रकार शृंगार रस ही प्रधान रस है।

इन तीनों स्थापनाओं के संबंध में डॉ. नगेन्द्र का विचार है कि “काव्य के स्थायी भाव प्रायः सभी मौलिक मनोवृत्तियाँ होने के कारण स्वतंत्र ही हैं, उनका एक-दूसरे में पूर्ण अंतर्भाव संभव नहीं है।”

देव ने रस के कुछ और भेदों की भी चर्चा की है जिनके लक्षण वे स्वयं भी नहीं दे पाए हैं केवल उदाहरण देकर काम चलाया है—

सरस-निरस, सम्मुख-विमुखा, स्व-पर-निष्ठ पहिचानि।

भीत-अभीत, उदास चित, उचित सुचित बखानि॥

(शब्द-रसायन)

ये सभी नाम देव के अपने नहीं हैं अपितु रसतरंगिणी से लिये गए हैं। अतः इन्हें नवीन उद्भावना नहीं माना जा सकता।

जहाँ तक अन्य रसों का संबंध है, वहाँ भी देव अपनी प्रवृत्ति के अनुसार भेदोपभेदों द्वारा विस्तार करते हुए दिखाई देते हैं जैसे हास्य के तीन भेद—उत्तम, मध्यम और अधम—करुण के पाँच भेद—करुण, अतिकरुण, महाकरुण, लघुकरुण और सुखकरुण। इसी प्रकार वीभत्स में जुगुप्सा के दो भेद उन्होंने दिए हैं किंतु स्पष्टया उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाए हैं। शांत के भी दो भेदों का कथन देव के ‘भवानीविलास’ में मिलता है—भक्तिमूलक शांत और शुद्ध शांत और फिर प्रथम भेद के तीन उपभेद भी गिना देते हैं—प्रेमभक्ति, शुद्धभक्ति और शुद्धप्रेम। शब्द रसायन में देव इन भेदों उपभेदों के चक्र से शायद निकालने का मार्ग खोजते नजर आते हैं और वहाँ शांत के भेद नहीं करते। इसी प्रसंग में वीर रस के स्वीकृत भेदों और देव स्वीकृत भेदों का विवाद भी उल्लेखनीय है। देव ने धर्मवीर को छोड़ दिया है किंतु यहाँ भी वे कोई ठोस तर्क नहीं दे पाए हैं। संभवतः यहाँ भी वे रसतरंगिणी का अनुसरण ही कर रहे हैं।

संचारियों के विवेचन में पुनः देव भेद करते दिखाई देते हैं। उनके मतानुसार संचारी दो प्रकार हैं—शारीरिक और आंतर—

ते सारी रडर आंतर, द्विविध कहत भरतादि।

स्तंभादिक सारीर अरु, आंतर निरबेदादि॥

(भावविलास)

इसी प्रसंग में वे ‘छल’ को 34वाँ संचारी भी मान लेते हैं। कुछ संचारियों के अवान्तर भेद भी वे प्रस्तुत करते हैं। अपनी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप देव के आठ कामदशाओं के भी उपभेद करते हैं। (रसविलास) किंतु इस विस्तारप्रियता को विद्वान् निरर्थक बताते हैं—“परिस्थिति के अणु जैसे परिवर्तन हमारे भावों में कितने सूक्ष्म परिवर्तन कर देते हैं इसका हिसाब कौन लगा सकता है? इस प्रकार की संयोजनाओं द्वारा तो असंख्य नवीन भेदों की सृष्टि की जा सकती है। अतएव साधारण विवेक यही कहता है कि

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 145

उपलक्षण-रूप में मूल भेदों का वर्णन करके ही प्रसंग को समाप्त कर देना चाहिए। इस प्रकार का विस्तार रीति के अध्ययन में साधक न होकर बाधक ही होता है।”

वैसे तो शृंगार रस का विवेचन नवरसों के अंतर्गत ही किया जाना चाहिए किंतु देव के प्रायः सभी ग्रंथों में शृंगार रस की इतनी विशद विवेचना की गई कि उसे पृथक् रूप से ही लेना उचित होगा। देव ने शृंगार रस को जिस रूप में स्वीकार किया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

भाव सहित सिंगार मैं नवरस झलक अयत्न।
ज्यों कंकन मनि कनक को वाही मैं नवरत्न॥
निर्मल स्याम सिंगार हरि देख अकास अनन्त।
उड़ि-उड़ि खग ज्यों और रस विवस न पावत अन्त॥
अर्थधर्म ते होत अरु होत अर्थ तें काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिंगार सुखधाम॥ (सुमिल विनोद, 5, 6, 7)
सकल सार शृंगार है सरस माधुरी धाम।
स्यामहि के चरनन बरन दुःखहरन अभिराम॥
याहीं तें सिंगार रस बरनि कह्यो कवि देव।
जाको हैं हरि देवता सकल देव अधिदेव॥

इसलिए देव ने नवरसों में तीन मुख्य रस माने—शृंगार, वीर और शान्त और फिर इन तीनों में भी शृंगार को मुख्य मानते हुए अन्य दो का अंतर्भाव उसी में कर दिया। इसलिए उनका यह कथन कोरा सिद्धांत प्रतिपादन नहीं है—

युक्ति सराही मुक्ति हित, मुक्ति भुक्ति को धाम।
भुक्ति, मुक्ति और भुक्ति को, मूल सु कहिए काम॥
बिना काम पूरन भये लगै परम पर क्षुद्र।
रमनी राका ससि मुखी पूरे काम-समुद्र॥ (रसविलास-2, 3)

देव की दृष्टि में यह कामवासना नहीं है इसीलिए उन्होंने स्पष्ट किया है—

यह विचार प्रेमीन को, विषयी जन को नाहिं।
विषय बिकाने जनन की प्रेमी छियत न छाँहि॥

देव का शृंगार रस प्रेम पर आधारित है इस प्रेम का लक्षण कवि इस प्रकार देता है—

सुख दुःखहू में एक सही तन मन बचननि प्रीति।
सहज नेह नित-नित न्यो जहाँ सु प्रेम प्रतीति॥ (रसविलास, 4-21)

संभवतः इसीलिए कवि अधिकारपूर्ण घोषणा करता है—

“तबहीं लौं शृंगार रसु जब लग दम्पति प्रेम।” (प्रेमचन्द्रिका, 1-16)
“प्रेम हीन त्रिय वेश्या है शृंगाराभासा।” (प्रेमचन्द्रिका, 2-10)

देव के प्रेम विषयक विचार अन्य रीतिकवियों से भिन्न है। “स्वभाव से देव की अपनी वैयक्तिक आस्था एकनिष्ठ प्रेम में ही था। एक तरह से कहा जा सकता है कि उनका प्रेमविषयक दृष्टिकोण बिहारी,

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 149

मतिराम, पद्माकर आदि शुद्ध रीतिवादी कवियों और दूसरी ओर घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि रीतिमुक्त एकनिष्ठ प्रेमी कवियों का मध्यवर्ती था। उनकी शिक्षा और संस्कृति की प्रेरणा एक दिशा में थी, स्वभाव की दूसरी दिशा में। उनके संयोग-वियोग के वर्णनों में रीति और व्यक्ति का यही मिश्रण सर्वत्र मिलता है। वैसे संपूर्ण योजना रीतिग्रस्त है—परंतु विशेष वर्णनों में भावना का गहरा रंग है।”

शास्त्रीय दृष्टि से शृंगार रस का विवेचन किया जाए तो सर्वप्रथम उसके दो भेद-संयोग एवं वियोग की चर्चा अपेक्षित है। संयोग के भी दो अंग हैं—

1. रूपवर्णन
2. मिलन

देव की रूपविषयक मान्यता इस प्रकार है—

देखते ही जो मन हरै, सुख अँखियन को देइ।

रूप बरवानै ताहि जो जग चरो करि लेइ॥ (रसविलास)

ऐसा रूप जो नेत्रों को सुख देता हुआ मन को भी सुख दे उसके वर्णन में कवि का आत्मतत्त्व झलकता दिखाई देता है। ऐसा कवि जड़ सौंदर्य का वर्णन नहीं कर सकता। इसे सौंदर्यानुभूति की वह स्थिति कहा जा सकता है जिसमें आनंद की भावना प्रमुख हो जाती है। देव के ऐसे रूप चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

संग-संग डोलत सरवीन के उमंग भरी,

अंग-अंग उठत तरंग स्याम-रंग की।

ललित लिलार श्रम झलक अलक भार, मग में धरत पग जावक धुरौ परै।

देव मनि-नुपुर पदुम-पद दू पर है, भपूर अनुप रंग निचुरो परै॥

इन रूप वर्णनों के अतिरिक्त देव ऐसे रूप चित्र देने में भी कुशल हैं जहाँ सहचारी भाव रति ही होती है—

देव मैं सीस बसायो सनेह कै भाल मृगम्मद बिंदु कै भाख्यौ।

कंचुकी मैं श्रुपरो करि चोवा लगाइ लियो उरसों अभिलाख्यौ॥

कै मखतूल गुन गहने रस मरतिवंत सिंगार कै चाख्यो।

साँवरे लाल को साँवरो रूप, मैं नैनन को कजरा करि राख्यौ॥

मिलन के अंतर्गत प्रेमियों के मानसिक एवं शारीरिक सुख को परिगणित किया जाता है। परंपरागत रस-चेष्टाएँ, सुरत, विहार के चित्र देव ने भी प्रस्तुत किए हैं। “देव के नायक-नायिका की रस-चेष्टाओं के जो चित्र अंकित किए हैं उनमें मानसिक एवं शारीरिक सुख का रंग गाढ़ा है। उनमें मन और शरीर दोनों ही तन्मय होकर उत्सव मनाते हैं। एक ओर उन्होंने वासना का संस्कार अथवा परिशोधन कर मिलन को अतीन्द्रिय माना है—

दूसरों शब्दों में—केवल मन का सपना बनाकर नहीं छोड़ दिया है, दूसरी ओर शरीर की स्थूल चेष्टाओं का ही वर्णन कर उसे मांसल बुभुक्षा भी नहीं बना दिया है। एक रससिद्ध कवि की भाँति उन्होंने मांसलता

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 99

द्वारा भावना को प्रगाढ़ किया है और भावना के द्वारा मांसलता में रंग भर दिया। इसलिए उनके मिलन के चित्रों में विशेष रसमग्नता मिलती है।”

दूरि धरो दीपक झिलमिलात भीनो तेज, सेज के समीप छहरा-यो तम तोम सो।
दूलहै दुराइ आली केलि के महल गई, पेलि के पठाई वधू सरद के सोम सो।
अंक भरि लीन्हीं गति अंचल को घोरु देव, जोरु कै जनावै नवयौवन के जोम सो।
लाल के अधरलाल अधरनि लागि लागि उठी मैन आगि पघिलान्यो मन मोम सो।

देव के काव्य में सुरत एवं सुखांत के चित्र भी मिल जाते हैं किंतु इनकी संख्या अति अल्प है। मिलन के प्रसंग में परिहास अर्थात् विनोद का अपना स्थान है। देव के काव्य में इन स्थलों की संख्या भी अल्प ही है किंतु जो स्थल हैं वे अत्यंत सरस हैं—

“लाल जितै चितवैं तिय पै तिय त्यों-त्यों चितौति सखीन की ओरी।”

संयोग शृंगार के अंतर्गत विहार का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। देव उन कवियों में से हैं जो इन वर्णनों में भी तन्मयता एवं आत्मीयता दिखाते हैं। राजसी ठाठबाठ की वस्तुओं की लिस्ट नहीं गिनवाते—

केसरिया चकचौंधत चीर ज्यों केसरि नीर सरूप लसीज्यों।
लाल के रंग में भीजि रही सु गुलाल के रंग में चाहत भी ज्यो।।

संयोग शृंगार के साथ-साथ देवकाव्य में वियोग शृंगार भी अपने समस्त भेदों—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण—सहित उपस्थित है। पूर्वराग की स्थिति का देव ने जो चित्र प्रस्तुत किया है वह अन्य रीतिकवियों में उपलब्ध नहीं होता—

सुंदरता सुनि देव दुहूँ के रहे गुन सों गुहि कै मन मोती।
लागे हैं देखिबे को दिन-रात गिने गुरुहू नहिं सौ किन गोती
देह दुहूँ की दहै बिनु देखे सु देखि दसा निसि सोवत कोती।
होती कहा हरि राधिका सों कहूँ नैको पहिचान जो होती।। (भावविलास, 3-46)

वास्तव में देव पीड़ा की गहरी अनुभूतियों से परिचित थे इसीलिए विरह की गंभीर अवस्थाओं का अंकन भी उन्होंने सफलतापूर्वक किया है। व्याधिन्य कृशता का जो चित्र देव प्रस्तुत करते हैं उसमें अनुभूति की प्रधानता होने के कारण अतिशयोक्ति होते हुए भी मार्मिकता बनी रहती है। पाठक का मन उस गंभीरता को स्वीकार करता है—

लाल विदेश बियोगिनी बाल, वियोग की आगि जई झूरि भूरी।
पान सों पानी सों प्रेम कहानी सों, प्रान ज्यों प्रानन यों मति हूरी।
देवजू आजुहि ऐवे की औधि, सु बीतति देखि बिसेखि बिसूरी।
हाथ उठायो उड़ाइबे को उड़ि काग गरे परी चारक चूरी।।

इसी प्रसंग में उन छंदों को भी स्मरण करना होगा जिनमें खंडिता की विवशता एवं व्यंग्य निहित है—

रावरे पायन ओट लसै पग गूजरी बार महाबर ढारे।
सारी असावरी की झलकै, छलकै छवि धाँधरे घूम घुमारे।।
आओ जु देव दुराओ न मोहिसों देवजू चंद टुरै न अंध्यारे।

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 103

देखौ हो कौन सो छैल छिपाई तिरीछे हँसे वह पीछे तिहारे।। (*रसविलास*, 8-35)
 मान के यद्यपि देव ने-गुरुमान, मध्यमान और लघुमान-तीन भेद किए हैं किंतु उदाहरण सभी के स्थिति को स्पष्ट करने में सक्षम हैं। मान के पश्चात् होने वाले पछतावे की स्वाभाविकता और भी अनोखी है-

‘देव’ वै सुभाय मुसुकाय उठि गए, यहि
 सिसिकि-सिसिकि निसि खोई, रोय पायो प्रात।
 को जानै री बीर, बिनु बिरही बिरह-बिथा?
 हाय-हाय करि पछिताय, न कछू सोहात।
 बड़े-बड़े नैनन सों आँसू भरि-भरि ढरि,
 गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलाने जात।।

प्रवास के चित्रों में जहाँ संताप एवं दाह है वहाँ देव ने स्वाभाविकता को भी सम्मिलित कर दिया है जिससे पाठक की अनुभूति सहानुभूति में परिवर्तित होने लगती है-

लाल बिदसे सु, बालवधू बहु भाँति बरी बिरहानलही मैं।
 लाज भरी गृहकाज करै, कहि देव परैं न कहूँ कल ही मैं।।
 नाथ के हाथ के हेरि हरा हिय, लागि गई हिलकी गलही मैं।
 आँखिन के अँसुवा लखि लोगन, लीली लजीली लिये पलही मैं।। (*भावविलास*, 2-72)

यह दाह और संताप यहीं समाप्त नहीं होती। इसकी एक और अवस्था भी है जो करुण तक पहुँच जाती है-

कालिय-काल, महा विष-ज्वाल, जहाँ जल-ज्वाल जरै रजनी-दिनु
 ऊरध के उध के उबरै नहीं, जाकी, बयारि बरै तरु ज्यों तिनु।
 ता फनि की फन-फाँसिन मैं फँदि जाय फँस्यौ, उकस्यो न अजौ छिनु।
 हा! ब्रजनाथ, सनाथ करौ, हम होती हैं नाथ, अनाथ तुम्हें बिनु।। (*भावविलास*, 3-80)

इस प्रकार शृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग एवं वियोग को देव काव्य में देखने एवं परखने के पश्चात् निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि देव का दृष्टिकोण शुद्ध रीतिकालीन नहीं था। वातावरण के प्रभाववश कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो विलासिता अथवा रसिकता की ओर संकेत करती हैं किंतु देव व्यक्तिगत रूप से एकनिष्ठ प्रेम में आस्था रखते थे। उनके शृंगार रस का मूल प्रेम ही है और इसी प्रेम ने उस तन्मयता को समाविष्ट किया है जो अन्य रीतिकवियों को उपलब्ध नहीं है।

नायिका भेद विवेचन

देव यद्यपि सर्वांग निरूपक रीति आचार्य हैं किंतु उनका प्रिय विषय शृंगार रस और उसमें भी प्रिय नायिकाभेद विवेचन रहा है। भावविलास, भवानीविलास, कुशल विलास, प्रेमतरंग, सुजानविनोद और सुखसागर तरंग-सभी में रस के आधारभूत नायक-नायिका का ही वर्णन है। ‘रसविलास’ तो पूर्णतः नायिकाभेद को ही समर्पित है। शृंगार रस एवं नायिकाभेद विवेचन के लिए देव ने भानुदत्त की ‘रसमंजरी’, केशव की ‘कविप्रिया’ और रहीम के ‘बरवै नायिका भेद’ को आधार बनाया है। शृंगार रस के स्थायी भाव रति के आलंबन-रूप नायक-नायिका ही हैं इसकी स्थापना देव ने इस प्रकार की है-

बानी को सार बखान्यो सिंगार।
सिंगार को सार किसोर-किसोरी।

और इसमें भी 'किसोरी' अर्थात् 'नायिका' को उन्होंने प्रमुख माना है। देव ने स्पष्ट रूप से तो नायिका-लक्षण नहीं दिया किंतु नायिका-भेद निरूपण के आरंभ में 'रमणी' का जिस रूप में कथन किया है उससे उसके स्वरूप का आभास मिल जाता है—

रमनी राका ससिमुखी, पूरे काम समुद्र।
बिना बाम पूरने भये, लगे परमपद क्षुद्र॥

(रसविलास)

तत्पश्चात् देव की स्थापना है—

जा कामिनी में देखिए, पूरन आठहु अंग।
ताही बरनै नायिका, त्रिभुवन मोहन रंग॥
पहिलै जोबन, रूप, गुण, सील, प्रेम पहिचानि।
कुल, वैभव, भूषन बहुरि, आठो अंग बखानि॥

(रसविलास, 4-6, 7)

अर्थात् अष्टांगवती स्त्री नायिका कहलाती है। नायिका के भेदों एवं उपभेदों की चर्चा देव अपने कई ग्रंथों में कर चुके थे किंतु रसविलास में 'नवीन प्रकार' देने का मोह नहीं त्याग सके—

एक बार जद्यपि कही, मति प्राचीन प्रकास।
भाव सहित शृंगार रस, रचि के भाव विलास॥
रसविलास रचि ग्रंथ सों, कहत दूसरी बार।
वही नायिका भेद सब, सुनहु नवीन प्रकार॥

(रसविलास, 4, 40, 41)

रसविलास एक प्रकार से नायिका-भेद का कोश कहा जा सकता है। देव रीतिकाल के सर्वाधिक विस्तारप्रिय कवि थे इसलिए उन्होंने इसका परिचय रसविलास में भी दिया है। जहाँ अन्य कवियों ने नायिका भेद विवेचन का आधार कर्म, काल, गुण, वयःक्रम, दशा और जाति को माना है वहाँ देव ने प्रकृति, देश, सत्त्व और अंश के आधार को भी ग्रहण कर लिया है। इसलिए वे कहते हैं—

जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जान।
प्रकृत सत्त्व नायिका के आठों भेद बखान॥

(रसविलास, 5-3)

जाति के आधार पर देव ने नायिका के चार भेदों का कथन किया है—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिणी और हस्तिनी। संस्कृत आचार्यों ने यद्यपि इनका नाम नहीं लिया किंतु केशवदास ने इनका नामोल्लेख किया है। कर्म के आधार पर तीन प्रकार की नायिकाएँ हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या।

गुण के आधार पर देव ने सभी नायिकाओं के तीन-तीन भेद गिनाए हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

देश के आधार पर मध्यप्रदेश वधू, मगधवधू, कौशलवधू, पाटलवधू, उत्कलवधू, कलिंगवधू आदि 27 भेदों की चर्चा की है।

काल के आधार पर देव आठ प्रकार की नायिकाओं की चर्चा करते हैं—स्वाधीनपतिका, कलहान्तरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खण्डिता, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा और प्रोषितपलिका। यह विभाजन सर्वप्रथम भरत ने किया है। देव ने इस प्रसंग में 'गतागतपतिका' भेद भी जोड़ा है जो मौलिक उद्भावना नहीं कही जा सकती।

वयःक्रम के आधार पर स्वकीया के तीन भेद स्वीकृत हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। देव इसमें मुग्धा के फिर पाँच भेद कर देते हैं—वयःसन्धि (12 वर्ष) नवलवधू (12-13) नवयौवना (13-14) नवल अनंगा (14-15) और सलज्जरति (15-16) ये भेद भी देव के मौलिक नहीं हैं। इनका कथन केशव और केशव से पूर्व विश्वनाथ ने किया था। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ केशव ने चार भेद स्वीकार किए थे, वहाँ देव ने वयःसन्धि जोड़कर इनकी संख्या पाँच कर दी है और यह भेद विश्वनाथ ने भी स्वीकार किया है।

इसी प्रकार देव ने मध्या और प्रौढ़ा के भी चार-चार उपभेदों की चर्चा की है किंतु उनके साथ वर्ष विभाजन अपना दिया है—

- | | | |
|---------|---|----------------------------|
| मध्या | : | 1. रूढ़ यौवना (16-17 वर्ष) |
| | | 2. प्रगट मनोजा (17-18) |
| | | 3. प्रगल्भ वचना (18-19) |
| | | 4. विचित्र सुरता (19-20) |
| प्रौढ़ा | : | 1. लब्धपति (20-21 वर्ष) |
| | | 2. रतिकोविदा (21-22) |
| | | 3. आक्रांतनायका (22-23) |
| | | 4. सविभ्रमा (23-24) |

यही वर्ष विभाजन देव की आलोचना करवाता है क्योंकि “यह अपने आप में अर्थहीन है। मानव स्वभाव आयु की घड़ी द्वारा परिचालित नहीं है।”

भवानी विलास में आयु के इन वर्षों को देव ने अंशभेद के अनुसार क्रमबद्ध किया है। अंशभेद के अनुसार नायिका के पाँच भेद भी दिए हैं—सात वर्ष तक देवी, सात से चौदह वर्ष तक देव-गन्धर्वी, चौदह से इक्कीस वर्ष तक गन्धर्वी, इक्कीस से अट्ठाईस तक गन्धर्व मानुषी और अट्ठाईस से पैंतीस तक शुद्ध मानुषी। इनमें से देवी पूज्य होती है, गन्धर्वी भोग के लिए और मानुषी सुख-संतान के लिए है।

प्रकृति के आधार पर देव वात, पित्त और कफ को ग्रहण कर नायिकाभेद प्रस्तुत करते हैं।

सत्त्व के आधार पर नौ भेद रच डालते हैं किंतु उनकी भेद विस्तारप्रियता यहाँ भी रुकती नहीं है। जाति अर्थात् वर्ण-व्यवसाय तथा वास की दृष्टि से भी भेदों की एक लंबी सूची तैयार कर देते हैं। नागरी, पुरवासिन, ग्रामीण, वनवासिन, सेन्या और पथिकतिय के उपभेदों की जब वे चर्चा करते हैं तो उसमें आश्चर्यचकित कर देने वाले परिणाम सामने आते हैं। वे चूहरी, नाइन और तेलिन को भी नायिका मान लेते हैं। देव ने यद्यपि भेदों की लंबी सूची तैयार कर ली है किंतु इन सभी का उल्लेख उनके पूर्ववर्ती कर चुके हैं। रहीम के ‘बरवै नायिका भेद’ में वर्ण-व्यवसाय के अनुसार नायिकाभेद उपस्थित है। देशभेद के संकेत मम्मट एवं केशव की ‘रसिकप्रिया’ में मिलते हैं। इस विवेचन में देव की विस्तारप्रिय प्रवृत्ति के अतिरिक्त और कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। संभवतः इसीलिए विद्वान् ‘वितण्डा मात्र’ समझते हैं—“विवेक और सुरुचि की दृष्टि से भी यह सब वितण्डा मात्र है। भला खर, पिशाच आदि सत्त्वों से युक्त नायिकाएँ सहृदय

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 153

की रति का आलंबन कैसे मानी जाएँगी? वास्वत में इस विस्तार से रस-शास्त्र के मनोवैज्ञानिक विवेचन में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती, वरन् नायिका-भेद का उद्देश्य ही भ्रष्ट हो जाता है।”

इस भेद विवेचन में परकीया नायिका को उसके दो मुख्य भेदों-परोढ़ा और कन्यका तथा छः उपभेदों-गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता-सहित देव ने स्वीकार किया है। यहाँ भी वे विश्वनाथ से पूर्णतः प्रभावित हैं।

सामान्या के लक्षण और उदाहरण देव ने एक-दो स्थलों पर दिए हैं किंतु वे स्वकीया के प्रेम को ही सच्चा प्रेम मानते हैं। सामान्या के प्रेम को वे मात्र विषय-तृप्ति मानते हैं।

इसी संदर्भ में देव परंपरानुसार दो अन्य भेदों की चर्चा करते हैं-ज्येष्ठा और कनिष्ठा। पति-प्रेम के आधार पर किया गया यह विभाजन आगे चलकर तीन अन्य भेदों को जन्म देता है जिनका मूलाधार मान है-धीरा, धीराधीरा और अधीरा। यहाँ भी देव कोई नूतन उद्भावना नहीं कर पाए हैं क्योंकि भानुदत्त और विश्वनाथ दोनों ने इन्हें स्वीकार किया है।

इस प्रसंग में यदि देव का योगदान खोजा जाए तो निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि भेदों-उपभेदों के अलावा कोई मौलिक योगदान दिखाई नहीं देता। जब कभी वे कोई नई संगति बैठाने का प्रयत्न करते भी हैं तो वहाँ भी उनके कथन उनके विरोधी बनकर सामने आ खड़े होते हैं। उदाहरण के लिए देव की दो नवीन संगतियों की ओर डॉ. नगेन्द्र ने संकेत किया है-

प्रथम संगति में मुग्धा, मध्या और प्रोढ़ा के भेदों की पूर्वराग, प्रथम संयोग और सुखभोग के साथ संगति-

पूर्वराग के आधार पर देव ने मुग्धा के चार भेदों को सम्मिलित किया है-वयस् सन्धि, नवलवधु, नवयौवना और नवल अनंगा।

प्रथम संयोग की स्थिति के अनुसार मुग्धा का भेद सलज्जरति और मध्या के दो भेदों रूढयौवना तथा प्रगटमदना को सम्मिलित किया है।

सुखभोग अथवा सुरति के आधार पर उन्होंने मध्या के दो भेदों-प्रगल्भ वचना तथा विचित्र सुरता और प्रौढ़ा के चार भेदों-लब्धापति, रतिकोविदा, वशवल्लभा एवं सविभ्रमा को गिनाया है।

द्वितीय संगति के अनुसार देव मुग्धा के अंतर्गत अभिलाषा आदि आठ कामदशाओं का वर्णन करते हैं। इसी में आगे चलकर वे मध्या के अंतर्गत स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाओं को जोड़ देते हैं और तत्पश्चात् प्रौढ़ा के अंतर्गत लीला विलास आदि दस भावों का कथन करते हैं।

नूतन सी दिखने वाली इन संगतियों का डॉ. नगेन्द्र ने औचित्य एवं महत्त्व की दृष्टि से खंडन किया है-“औचित्य की दृष्टि से तो मुग्धा के प्रथम चार भेदों में पूर्वानुराग या पूर्वराग-वियोग मानना असंगत होगा। यह ठीक है कि भय और लाज के कारण मुग्धा मिलन (सुरति का) पूर्ण सुख नहीं कर पाती, परंतु मिलन का अभाव यहाँ नहीं होता है। अतएव पूर्वराग वियोग की स्थिति मुग्धा के लिए अनिवार्य नहीं मानी जा सकती। दूसरी संगति इससे अधिक दूररूढ़ और अयुक्त है-एक ओर तो, पहली संगति में मुग्धा को भय और लाज के कारण मिलन की अनुभूति के भी अयोग्य माना गया है, दूसरी ओर फिर द्वितीय संगति में, उसके अंतर्गत प्रलाप, उद्वेग, मरण आदि विकसित कामदशाओं को भी खपा दिया गया है। पूर्वराग में

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 155

आठों कामदशाओं का अंतर्भाव ही कुछ संगत नहीं है। इसी प्रकार आठ अवस्थाओं को मुग्धा में चाहे न भी मानिए—यद्यपि भानुदत्त, चिंतामणि आदि सभी ने ऐसा किया है—परंतु प्रौढ़ा को उनसे वंचित करना किसी प्रकार भी उचित नहीं होगा। प्रौढ़ा और हावों की संगति के विषय में भी यही कहा जा सकता है। विभ्रम, विच्छिन्ति-विलास, लीला आदि की संभावना तो एक प्रकार से मुग्धा और मध्या में ही अधिक है। प्रौढ़ा में गंभीरता आ जाती है अतएव उसे यह सब न अधिक रुचिकर ही होता है, न शोभन ही।”¹

इन दो संगतियों के असफल प्रतिपादन के अतिरिक्त देव के इस विवेचन में कतिपय अन्य स्थल भी ऐसे हैं जिन्हें प्रस्तुत करना अनुचित न होगा। जैसे—एक स्थान पर नायिका के यौवन, रूप, गुणशील आदि का आठ अंग बताकर, उसके बहिरंग-अंतरंग एवं सामाजिक-मनोवैज्ञानिक स्वरूप की ओर इंगित करते हैं तो दूसरी ओर जाति, कर्म, गुण, देश आदि अन्य आठ आधारों की चर्चा करते हैं ऐसा लगता है कि देव के अपने कथनों में ही कोई समन्वय नहीं है। वे परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। दूसरा संपूर्ण नायिकाभेद विवेचन के उपरांत देव ऐसी घोषणा कर देते हैं जो इस चर्चा का रूप ही बदल देती है—

ताते कामिनी एक ही कहन सुनन को भेद।

राचै प्यावै प्रेम रस, मेटै मन के खेद॥

कौन गनै पुर नगर वन, कामिनी एकै रीति।

देखत हरै विवेक का चित हरै करि प्रीति॥

(*रसविलास*, 4-2-4)

इस संपूर्ण प्रसंग में एक तथ्य ओर सामने आता है कि लक्षण एवं भेद कथन तो औपचारिकता का निर्वाह मात्र है किंतु सरस एवं प्रभावशाली उदाहरण उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि है।

देव के आचार्यत्व की चर्चा तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक अलंकार, शब्दशक्ति, रीति-गुण तथा पिंगल संबंधी उनकी मान्यताओं एवं स्थापनाओं की चर्चा न की जाए। वास्तव में वे सर्वांग विवेचक रीति आचार्य हैं। किंतु पाठ्यक्रमानुसार हमारा विवेच्य ग्रंथ ‘रसविलास’ है जो पूर्णतः नायिका-भेद को समर्पित है। इसलिए अन्य काव्यांगों की चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है।

इस संपूर्ण चर्चा के उपरांत यदि देव के आचार्यत्व का मूल्यांकन किया जाए जो निष्कर्ष समक्ष आते हैं वे बहुत अच्छे नहीं हैं। सर्वप्रथम काव्यांग चर्चा ऐसा विषय था जो देव से पूर्व हिंदी में और उससे भी पूर्व संस्कृत में पूर्ण विस्तार प्राप्त कर चुका था। उसमें नवीनता की कोई संभावना ही नहीं बची थी। देव नवीन उद्भावनाएँ करते भी तो क्या करते और जहाँ देव नवीन स्थापनाएँ करते हैं, वहाँ असफल सिद्ध होते हैं। ऐसा देव के साथ ही नहीं रीतिकाल के अन्य रीतिकारों के संबंध में सत्य सिद्ध होता है। यदि मौलिकता खोजनी ही हो तो उसमें भी देव भेद विस्तार एवं वर्ग बाँधने से आगे नहीं बढ़ सके हैं। यह विवेचन भी अंत तक पहुँचते-पहुँचते ‘वितण्डा’ रह जाता है। इसके अतिरिक्त कभी लक्षण-उदाहरण के फेर में पड़कर देव असफल दिखाई देते हैं तो कहीं उनके अपने ही दो कथन एक-दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। वास्तव में उनका महत्त्व रसवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा के कारण ही है। इस क्षेत्र में उनकी रुचि एवं गहरी पैठ दोनों हैं अन्य क्षेत्रों में इनका अभाव ही दृष्टिगत होता है।

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 157

(ख) देव का कला पक्ष

देव प्रतिभावान कवि थे। उनकी अनुभूति तीव्र एवं समृद्ध थी। साहित्य निपुणता भी भरी-पूरी थी। उनके काव्य में आत्मतत्त्व की प्रधानता सर्वत्र दिखाई देती है। ऐसी प्रतिभा संपन्न कवि कला के क्षेत्र में सफलता प्राप्त न करे ऐसा संभव ही नहीं है। अनुभूति की संपन्नता अभिव्यक्ति की समृद्धि को पाकर धन्य हो गई है। कला की दृष्टि से देखें तो देव कभी रंगों में बाँधते हैं तो कभी रेखाओं का सहारा लेते हैं तो कभी शब्दों से अनुभूति को सजाते संवारते हैं। अर्थात् यही उनकी कला है जो अपूर्त अनुभूतियों को मूर्त करती है। इस क्षेत्र में बिंब-विधान अर्थात् चित्र, जो रंगों एवं रेखाओं से संयुक्त हैं, अप्रस्तुत विधान, प्रतीक विधान, भाषा और छंद-विधान उनका साथ निभाते चलते हैं।

बिंब विधान

वस्तु, भाव या विचार को कल्पना के माध्यम से इन्द्रियगम्य बनाने वाला व्यापार ही बिंब है। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार “बिंब वह शब्द चित्र है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर शब्दों द्वारा निर्मित होता है। काव्य-बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिनके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।”¹

ऐन्द्रियता बिंब का प्रमुख तत्त्व है, इसलिए ऐन्द्रिय माध्यम के आधार पर बिंब के पाँच भेद किए जा सकते हैं—दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य और आस्वाद्य। देव के काव्य में दृश्य बिंबों का विधान मिलता है। वस्तुतः देव रूप के प्रति अपनी सूक्ष्म संवेदना को पाठक के मन में ज्यों का त्यों जगाना चाहते थे जिसके लिए दृश्य सौंदर्य एवं दृश्य बिंबों ने उनका खूब साथ निभाया है—

देव मनि-नूपुर-पदुम-पद दूर पर है,

भूपर अनूप रूप रंग निचुरो परै।

(शब्दरसायन)

एक अन्य स्थल पर दृश्य बिंब में रूप तत्त्व सूक्ष्म दृष्टि द्वारा संश्लिष्ट प्रतीत होता है इसमें यद्यपि रंगों का प्रयोग नहीं है किंतु वाञ्छित अवयवों के चयन ने इसे अद्भुत बना दिया है—

पीत रंग सारी गोरे रंग मिल गई 'देव'

श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।

छूट अलकनि झलकनि जल कननि की,

बिना बेंदो बन्दन बचन सोभा निकसी,

तजि-तजि कुंज जेहि ऊपर मधुप पुंज,

गुंजरत मंजुरब बोलै बाल पिकसी।

नैन हंसाइ नेकु नीबी उकसाइ,

हँसि ससिमुखी सकुची सरोवर ते निकसी॥

(शब्दरसायन)

दृश्य बिंब और श्रव्य बिंब के सम्मिश्रण का यह अनूठा उदाहरण है। वस्तुतः यहाँ प्रत्येक अवयव का स्वतंत्र बिंब है।

¹ काव्य-बिंब, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 5

श्रव्य बिंब भी अपना दिखाते हैं। कभी नूपुरों की रूनझुन है तो कभी वीणा वंशी के स्वर हैं तो कभी नायिका की मधुर हँसी सुनाई देती है। एक श्रव्य बिंब सखी के वार्तालाप से संबंधित है जिसे सुनते ही अनुराग के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं—

‘यो सुनि ओछे उरोजन पै अनुराग कै अंकुर से उठि आए।’ (भावविलास)

श्रव्य बिंब का सटीक उदाहरण निम्नलिखित है जो अन्यत्र दुर्लभ है—

सहर-सहर सोंधो सीतल समीर डोले,

घहर-घहर घन घेरिकै घहरिया।

झहर-झहर झुकि झीनी झरि लायो देव,

छहर-छहर छोटी बूंदन छहरिया॥

हहर-हहर हंसी हंसी हंसी कै हिलौरे चढ़ी,

थहर-थहर तनु कोमल लहरिया।

फहर-फहर होत पीतम को पीतपट,

लहर-लहर होत प्यारी के लहरिया॥

(रसविलास)

आस्वाद्य बिंब काव्य में अति अल्प स्थान पाते हैं किंतु देवकाव्य में इनकी उपस्थिति परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से प्रशंसनीय है—

‘बेगि ही बूड़ि गई परिवयां अंखियां मधु की मक्खियां भई मेरी’॥

(प्रेमचन्द्रिका)

‘मेरे सुखदाई दै रे देवजू दिखाई नैकु,

ए रे ब्रज भूप तरे रूप रस छटकी है।’

(प्रेमचन्द्रिका)

इन चित्रों के साथ-साथ देवकाव्य में कुछ ऐसे चित्र भी हैं जो गतिशील हैं। कवि की कुशलता एवं कारीगरी देखते ही बनती है—

भूषननि भूलि पैन्हे उल्टे दुकुल देव,

खुले भुजमूल प्रतिकूल बिधि अंक में।

चूल्हे चढ़े छाँड़े, उफनात दूध भाडे।

उस सुज छाँड़े अंक, पति छाँड़े परजंक मैं॥

इस प्रसंग में रेखाओं के महत्त्व को यदि न दर्शाया जाए तो बिंब विधान का प्रसंग अधूरा रह जाएगा। वास्तव में रेखाओं के बिना बिंब अस्तित्व में नहीं आ सकता। जो कवि इन रेखाओं के संश्लेषण और उचित प्रयोग द्वारा बिंब का निर्माण करने में जितना कुशल होगा वह उतना ही उच्चकोटि का कलाकार होगा। उसकी ऐसी रचना भी स्वच्छ एवं आकर्षक बिंब की प्रतीति कराने में सक्षम होगी। देव इस दृष्टि से अत्यंत कुशल कलाकार हैं। उनकी रेखाएँ किसी-न-किसी वैशिष्ट्य को लेकर उभरी हैं। जहाँ विषय को साधारण रूप से प्रस्तुत करना इनका अभीष्ट रहा है वहाँ ये सामान्य हो गई हैं और जहाँ कोई स्पष्ट तथा चमत्कारपूर्ण बिंब उन्होंने व्यक्त किया है वहाँ ये स्थूल और जहाँ कोई स्पष्ट तथा चमत्कारपूर्ण बिंब उन्होंने व्यक्त किया है वहाँ ये स्थूल और जहाँ व्यंग्य की प्रतीति कराने का प्रयत्न रहा है वहाँ ये कटाव, मोड़, नुकीलेपन एवं पैनी धार के साथ प्रस्तुत हुई हैं। चित्र में प्राण इसी उभरी हुई रेखा से आता है—

“देव कछू रद बीरी दबी री सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख।
कभी-कभी देव व्यंजक रेखा को एकदम हल्की कर देते हैं—

लाल जितै चितवै पै तिय त्यों-त्यों चितौति सखीन की ओरी॥
दोनों दृष्टियों को मिलाने वाली रेखा निश्चित ही हल्के हाथों से खींची गई है।

बिंब-निर्माण में रेखाओं के साथ-साथ वर्ण-योजना का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। रंग बिंबों को समृद्ध बनाते हैं किंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि बिना रंगों के कलाकार का काम नहीं चल सकता। वह चाहे तो संपूर्ण बिंब को रेखाबद्ध ही छोड़ सकता है। देव का काल समृद्धि का काल है इसलिए उनकी चित्रशाला में रंगों की बहार है। कभी छाया प्रकाश का संयोजन तो कभी अनुरूप एवं प्रतिरूप रंगों का नियोजन। छाया प्रकाश का संयोजन अपूर्व है—

सूझत न गात बीति आयो अधरात,
लखि सोये सब गुरुजन जानिकै बगर कै।

+ + + + + +

देवता की दामिनी मसाल है कि जोति जाल,
झगरो मचत जगे सिगरे नगर के॥

निस्तब्ध काली रात में जलती मशाल में अथवा सघन मेघों में चमकती हुई बिजली से छाया-प्रकाश का चित्र बनता है वह अद्भुत है। जब वर्णों के मिश्रण का प्रसंग आता है तो देव का यह प्रसिद्ध छंद ध्यान में आ जाता है—

नीचे को निहारते नगीचे नैन-अधर,
दुबीचे पर्यौ स्यामारुन आभा अटकन को।
नीलमनि भाग है, पदुमराग ह्व के,
पुखराग ह्वै बिंध्यौ रहत छवै निकट कन को।
देव विहँसत दुति दंतन जुड़ाति जोति,
विमल मुकुत हीरा-लाल गटकन को।
थिरकि थिरकि थिर थाने पर थाने तोरि,
बाने बदलत नट मोती लटकने को॥

कहीं-कहीं देव रंग भरते नहीं व्यंजित भी करते हैं—

चौगु नो रंग चढ़ौ चित में,
चुनरी के चुचात ललाल के निचोरत॥

देव के इस बिंब विधान को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनके समक्ष यदि काव्यशास्त्रीय नियमों के बंधन न होते, यदि ये रेखाओं, रंगों आदि का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते तो संभवतः इनके बिंब अधिक निखरे हुए होते।

दूसरा महत्त्वपूर्ण साधन जो देव की काव्य कला को समृद्ध बनाता है वह है—अप्रस्तुत विधान। अनुभूति के सौंदर्य को अभिव्यक्त करने के लिए कवि को विशेष सतर्कता बरतनी पड़ती है और देव इसमें निपुण हैं। साधारण साधनों के स्थान पर असाधारण साधनों का कब और कहाँ प्रयोग करना है इसे कवि देव

भली-भाँति जानते हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने अप्रस्तुत-विधान जैसे विशिष्ट साधन को अपनाया है जो साम्य पर आधारित है। यहाँ देव ने रूप साम्य, धर्म साम्य और प्रभाव साम्य की योजना की है।

जहाँ तक रूप साम्य का प्रश्न है इसका प्रयोग देव ने शृंगार चित्रों में किया है, जहाँ वे अनुभूति की स्पष्टता की तीव्रता चाहते हैं। वसःसन्धि का यह उदाहरण इस प्रसंग में सर्वथा सटीक है जहाँ कवि ने वयःसन्धि में छिपते हुए शैशव तथा नवीन यौवन के आगमन की उपमा दी है राका की चाँदनी से तथा प्रभातकालीन आभा से—

बैस बराबर दोऊ सुहात सु गोरी को गात प्रसात ज्यों पूनो।

कहीं-कहीं रूप साम्य रूढ़ उपमानों पर आधारित होने के कारण असफल भी रही है किंतु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। कहीं-कहीं पुराने उपमान नवीन योजना पाकर नए रूप में दिखाई देते हैं।

साधर्म्य के अंतर्गत देव ने धर्म अथवा गुण की अनुभूति को तीव्र बनाया है। यहाँ वे जब आँखों को 'मधु की मखियाँ' कहते हैं तो उनमें रूप की नहीं धर्म अर्थात् गुण की ही समानता है अर्थात् रस का लोभ समान है।

एक अन्य स्थल पर देव नायिका के गोरे अंगों और पारे के मोतियों की चर्चा करता है, जहाँ दोनों के बिखर जाने में गुण का साम्य लक्षित होता है। ऐसे स्थल देव की प्रतिभा के परिचायक हैं—

पारे ही के मोती किंधौ प्यारी के सिथिल गात,
ज्यों ही ज्यों बटोरियत त्यों-त्यों बिथुरत हैं।

प्रभाव साम्य के चित्र तो निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं, जहाँ रूप साम्य भी पीछे छूट जाता है।—

अब लगि आँखिन की पूरती कसौटिन में,
लागी रहै लीक वा की सोने की गुराई की॥

उपमा के प्रति देव का रूझान अधिक है इसलिए अप्रस्तुतविधान ही देव को सर्वाधिक प्रिय भी है। ये तो उपमा को ही सभी अलंकारों का मूल भी मानते हैं।

इसी प्रसंग में संभावनामूलक अप्रस्तुत विधान की चर्चा अनुचित न होगी। ऐसे विधानों में सौंदर्य संभावना पर आधारित रहता है। देव जैसे कवि जिनमें कोमल भाव एवं ललित कल्पना का प्राधान्य होता है, उन्हें ये अलंकार हेतुत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा प्रिय लगते हैं। जैसे—“दीप्ति मैं महीन सिखाई समीप सिखा गहरी दीप-सिखा की।” इस संभावना के लिए व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं है।

देव का रस के प्रति विशेष आग्रह था। इसके अतिरिक्त अतिशय भावुकता भी थी जो चमत्कार के लिए बहुत कम संभावना छोड़ती है। संभवतः यही कारण है कि देव के काव्य में चमत्कारमूलक अलंकार खोजने पर ही मिलते हैं। जब कभी वे इनका प्रयोग करते भी हैं तो चमत्कार को स्थूल नहीं बनने देते। यही स्थिति अतिशयमूलक अलंकारों के साथ भी है। देव चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अतिशयोक्ति का प्रयोग नहीं करते अपितु भाव को उद्दीप्त करने के लिए कहीं-कहीं इनका सफल प्रयोग करते हैं जैसे—

“हेम की बेलि भई हिम रासि, घरीक मैं घाम सों जाति घुरी है।”

विरहावस्था को तीव्रता प्रदान करने के लिए इससे बढ़कर अतिशयोक्ति संभव नहीं थी।

भाव संवेदन को तीव्र करने के लिए मानवीकरण जैसे आधुनिक अलंकार की अवस्थिति भी देवकाव्य में मिलती है—

ऐसे जो हों जानतो कि जैहै तू विषय के संग।
 ऐरे मन मेरे हाथ-पाँव तेरे तोरतो।।
 दीजिए दरस देव कीजिए संजोगिन ये,
 सु जोगिन ह्वै बैठी हैं, वियोगिनी की अँखियाँ।

देव मूलतः रसवादी कवि हैं। “उनकी रसमय अनुभूति भी रसमय है जिसके लिए कवि को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। भाव स्वतः ही अलंकारमयी भाषा में उतरते गए हैं। कवि के लिए अलंकार वाणी की सजावट न होकर अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। +++ कवि की अनुभूति सुन्दर है इसलिए उसका अलंकरण स्वतः ही हुआ है।”

देव की कला की परीक्षा करते समय यदि उनके प्रतीक विधान की चर्चा न की जाए तो परीक्षक अधूरा ही रह जाएगा। “अभिव्यक्ति में भाषा के माध्यम से प्रस्तुत होने वाला सांकेतिक शब्द प्रतीक है, जिसकी संख्या देवकाव्य में अत्यंत बिरल है। प्रतीक साधारण अनुभूतियों एवं भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते-करते असाधारण और विशिष्ट अनुभूति का द्योतक होता है। विशिष्ट परिणति और संदर्भ में ही उसकी स्थिति होती है। देव द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुत (उपमान) सामान्य से विशेष की ओर विकसित नहीं हुए। +++ में अप्रस्तुत प्रतीकात्मक होते हुए भी प्रतीक नहीं हैं, सादृश्य-विधान के अधिक निकट हैं। प्रतीक की सूक्ष्मता का उनमें अभाव है।”² किंतु देव का काव्य प्रतीकों से सर्वथा रहित नहीं है। डॉ. नगेन्द्र ने इस प्रसंग में तीन प्रकार के प्रतीकों का नामोल्लेख किया है—

1. सृजन के प्रतीक
2. नाश के प्रतीक
3. काम के प्रतीक

और देव के काव्य में अवस्थित प्रतीक-विधान को रति और काम पर आधारित माना है। ये प्रतीक कोमल, रमणीय एवं चित्रमय हैं। अर्थात् देव के प्रतीक भावमूलक हैं। यद्यपि देव ने अपने प्रतीकों का चयन प्राणी जगत, वनस्पति जगत और घरेलू जीवन से किया है फिर भी इनमें देव का व्यक्तिगत दृष्टिकोण और तत्कालीन जीवन भी चित्रित हुआ है—

शृंगार प्रतीक

1. ‘प्रात पयोदन ज्यों अरुणाई दिखाई दर्ई तरुणाई प्रबीनैं।’
2. ‘बेगि ही बूड़ि गई पखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी।’
3. अब लागि आँखिन की पूतरी कसौटिन में,
 लागी रही लोक वा की सोने की गुराई की।’

प्रात-पयोदों में अरुणिमा, रस में डूबी हुई मधुमुखी, कसौटी में साने की लीक—ये सभी शृंगार-प्रतीक हैं।

प्राणी जगत् संबंधी प्रतीक

1. मीन मृगीन करै दृगहीन सु कंजन खंजन खीन निहारो।

¹ देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, राज बुद्धिराजा, पृ. 130

² देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, राज बुद्धिराजा, पृ. 141

2. 'कोकिल ज्यों कल कूजती कुंजनि आपस में मिली पूजती पायन।'

घरेलू जीवन से संबंधी प्रतीक

1. 'माखन सो मन दूध सों जौवन है दधि सो अधिकौ उद ईठी।'

2. दीपति मैं महीन सिखाई समीन सिला गहि दीपसिखा की।

इनके अतिरिक्त देवकाव्य में 'युगगत प्रतीकों' की अवस्थिति भी देखी गई है "नायिका का विभाजन युगगत प्रतीक है। +++ कुशलविलास की नायिकाएँ सात्विक प्रेम की प्रतीक हैं। देव ने स्वकीया का ही महत्त्व स्थापित किया है। वास्तव में स्वकीया नायिका आदर्शवाद, त्याग और तपस्या का प्रतीक है। +++ परकीया नायिका प्रेमजन्य व्याकुलता का प्रतीक है। वास्तव में परकीया तत्कालीन नारी की भर्त्सना और उत्पीड़न का प्रतीक है।"²

कलापक्ष के अंतर्गत भाषा के स्वरूप (शब्दकोश, व्याकरण, पदयोजना आदि) एवं उसके सौष्ठव (काव्यगुण, प्रयोग कौशल अलंकरण आदि) की चर्चा करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि अभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख और सहज माध्यम भाषा ही है। देव की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है इसमें कोई विवाद नहीं है।

भाषा का स्वरूप

साहित्यिक ब्रजभाषा के शब्दकोश के समान देव का शब्दकोश भी भरा-पुरा है। संस्कृत का ज्ञान होने के कारण उनकी भाषा में संस्कृत प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। वैसे तो संस्कृत के शब्द ब्रजभाषा की प्रकृति के अधिक अनुकूल नहीं पड़े किंतु देव ने अन्य रीतिकवियों के समान उन्हें सदा तद्भव रूप देकर ग्रहण नहीं किया। अपनी भाषा की श्रीवृद्धि के लिए उन्होंने तत्सम शब्दों का सहारा लिया है—अनुराग, अनूप, गिरिवर, मधुप, दिवाकर, इन्दीवर, अरविन्द, कंद, तमाल, कोकिल, मनोज, इन्दिरा, पयोधि, सुरसरि जैसे शब्द इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। कहीं-कहीं अत्यधिक कठिन तत्सम शब्द भी हैं जिनके अर्थ जानने के लिए कोष देखना पड़ता है, जैसे—चामीकर, रथाङ्क, सरीसृप, आसीविष, क्षेरज, कैतव, वृन्दारक आदि किंतु ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है। तत्सम के साथ-साथ तद्भव शब्द भी उनके काव्य में स्थान पाते हैं जो कर्णप्रिय एवं सरल होने के कारण ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल प्रतीत होते हैं—कागद, फटिक, बतियाँ, दीपशिखा, लनाई, गारि, आगि, गुजरी, सौति आदि। एक अन्य विशेषता जो उनके शब्दकोष को समृद्ध बनाती है वह है—प्राकृत अपभ्रंश के अविकृत शब्द, जैसे—लोयन, विज्जु, मयन, मय, जूत नाट आदि। ये शब्द कभी-कभी तो हिंदी के तद्भव शब्द ही प्रतीत होते हैं। यह अनुमान लगा पाना कठिन हो जाता है कि ये प्राकृत-अपभ्रंश के शब्द हैं। वातावरण के प्रभाववश इनकी भाषा अरबी-फारसी के शब्दों को भी स्वीकार करती है किंतु इन शब्दों की संख्या बहुत कम है। गुलाब, महल, मखमल, कलेजा जैसे शब्द तो हिंदी के ही प्रतीत होते हैं। एक स्थल पर देव ने मुसलमान आश्रयदाता अकबर अली ख़ाँ की प्रशंसा में अरबी-फारसी के शब्दों की जो झड़ी लगाई है वह उल्लेखनीय है—साहिबी, जहाज, दरिया-गयाज, इतराज, गनीम, गाज, सिरताज, महमदी आदि। विदेशी शब्दों की ही भाँति प्रांतीय बोलियों के शब्द भी देव की भाषा में इतने एकरूप हो गए हैं कि उनको अलग से पहचान पाना कठिन हो जाता है। इनकी भाषा में नवीन से

¹ देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान, राज बुद्धिराजा, पृ. 147

² वही, पृ. 148

प्रतीत होने वाले कतिपय शब्दों की ओर डॉ. नगेन्द्र ने ध्यान आकृष्ट कराया भी है—“केवल तोड़-मरोड़ के कारण ही ये शब्द विलक्षण प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए ‘लपना’, ‘सौरई’ और ‘रिख्यो’ को लीजिए। लपना जल्पना से निकला है, सौरई श्यामलता की विकृति है और रिख्यो रेखा से बना लिया गया है।” देव की भाषा में नवीन से लगने वाले वे शब्द भी हैं जो तुक के आग्रह एवं यमक अथवा अनुप्रास के आग्रह के कारण विकृत हो गए हैं। जैसे—

औचक ही उचको कुच कुंद सौ।

भूख न भोजन की कछु ईछी॥

देवकाव्य में ऐसे शब्दों की भी कमी नहीं है जिनका कोई भी अर्थ निकालना असंभव है—तीभ, बावस, सीजी, दुहुव, तरावक, बसीकने, अर्थ लगाने के लिए काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

भाषा के स्वरूप की चर्चा करते समय उसे व्याकरण के आधार पर भी परखना होगा। देव की भाषा में व्याकरण के नियमों का काफी उल्लंघन हुआ है। इसका कारण यदि खोजा जाए तो वह तुक का मोह ही है। इसी के कारण क्रिया रूपों की तथा कारक चिह्नों की अव्यवस्था दिखाई देती है। कहीं-कहीं पर (वचन एवं लिंग दोष तो कहीं पर) वाक्य-विन्यास में भी शिथिलता दिखाई देती है।

क्रिया रूप की अव्यवस्था—

कछु और उपाय करै जनि ही इतने दुख सों सुख सों ‘भरिबी’ ।

फिरी अंतक सो बिन कंत बसंत सु आवत जीनत ही ‘जरिबी’।

बन बौरत बीरी है जाउगी देव सुने धुनि कोकिल की ‘डरिबी’।

जब डोलिहैं और अबीर भरी सु हहा कहि बीर कहा ‘करिबी’॥

वास्तव में क्रियाओं के रूप निश्चित न होने के कारण प्रायः सभी वैकल्पिक रूप मिलते हैं। भविष्यत् कालिक क्रियाओं में ग और ह दोनों में अंत होने वाले रूप तो मिलते ही हैं—कहीं-कहीं ‘बी’ में अन्त होने वाले रूप भी मिलते हैं। ‘बीकारान्त क्रियाएँ विधिलिङ्ग’ में ही प्रयुक्त होती हैं।

कहीं-कहीं दुहरे प्रत्यय भी देव ने लगाए हैं और क्रिया का रूप बिगाड़ दिया है—

‘माधव बितैहोगी’ उमा-धव को ध्यान के।’

यहाँ ‘हो’ और ‘गी’ दोनों भविष्यत् वाची प्रत्यय लगा दिए हैं।

कारक चिह्नों की अव्यवस्था—

भाषा में कसावट लाने के लिए देव ने अन्य कवियों के समान कारक चिह्नों को लुप्त कर दिया है। कर्ता का चिह्न ‘ने’ सबसे कम प्रयुक्त हुआ है। देव ने स्थान-स्थान पर ऐसी अशुद्धियाँ की हैं। कहीं-कहीं ऐसे स्थल भी मिलते हैं जहाँ कर्ता की विभक्ति के स्थान पर देव ने संबंध की विभक्ति लगा दी है—

“देव अहो बलि हौं बलिहारी, तिहारी सी प्रीति न निहारी न ‘मेरे’।”

तो कभी करण (सों) के स्थान अधिकरण (मैं) का प्रयोग कर दिया है—

“खुले भुजमूल प्रतिकूल विधि बंक ‘मैं’।”

वचन और लिंग दोष

“नैनन ते सुख के अँसुवा मनोँ भौर सरोज न ते सरक्यौ परै।”

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 217

यहाँ 'अँसुवा' बहुवचन है तो उसका उपमान 'भौर' भी बहुवचन में ही होना चाहिए। क्रिया भी बहुवचन की होनी चाहिए जो एकवचन ही है। 'सरक्यो' एकवचन है।

इसी प्रकार जब देव 'लहर लहर होत प्यारी की लहरिया' लिखते हैं तो 'लहरिया' को स्त्रीलिंग में प्रयोग करते हैं।

वाक्य-विन्यास में शिथिलता

देव की वाक्य-रचना अव्यवस्थित और उलझी हुई है। यह त्रुटि उनमें अन्य रीतिकालीन कवियों से कहीं अधिक है। वास्तव में देव का लक्ष्य भाषा की समृद्धि एवं अलंकरण था। वाक्य-रचना की विशेष-व्यवस्था यहाँ न के बराबर है। कभी अन्वय दोष तो कभी न्यूनपदत्व तो कभी अधिक पद दोष के उदाहरण आसानी से मिल जाते हैं—

काके कहैं लूटत सुनि हो दधि-दान मैं।

खींचतान कर अन्वय इस प्रकार उचित होगा—

काके कहैं दधि दान लूटत मैं सुन हो।

इसी प्रकार 'बालम और बिलोकि के बाल, दर्ई मानों खेंचि सनाल सरोज की' यहाँ 'माल' शब्द का अभाव रह गया है। और यहाँ अनावश्यक वाक्यांश उपस्थित है—

वह बह्यो गंध, 'बह बह्यो है' सुगन्ध।

इन दोषों के कारण देव की भाषा ने स्वरूप की शुद्धता और स्वच्छता तो खोई है किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि देव को व्याकरण के नियमों का ज्ञान नहीं था अथवा वे शुद्ध भाषा लिखने में असमर्थ थे। वास्तव में जहाँ तुक, यमक अथवा अनुप्रास का आग्रह नहीं रहा अथवा देव संयत से काम लिया है वहाँ भाषा पूर्णतः व्याकरणसम्मत है—

राधिका कान्ह को ध्यान धरै, तब कान्ह है राधिका के गुण गावै,
त्योँ अँसुआ बरसै बरसाने को पाती लिखैं लिखि राधे को ध्यावैं।
राधे है जाय घरीक मैं 'देव' सुप्रेम की पाती लै छाती लगावै;
आपने आप ही मैं अरुझै, सुरझै, बिरुझै, समुझै, समुझावै।

इस प्रकार समग्र रूप से कह सकते हैं कि देव की भाषा विश्रुत ब्रजभाषा है जो युगों से इस देश के विस्तृत भू-भाग की जन और काव्यभाषा रही है तथा देव तक आते-आते जिसका शब्द-भण्डार समृद्ध एवं व्याकरण सुनिश्चित हो गया था। देव की भाषा का शब्द भण्डार भी पर्याप्त समृद्ध-संस्कृत के तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों के साथ प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द जहाँ मिलते हैं वहाँ देशज एवं विदेशी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि छंद के निर्वाह, लय एवं तुक के कारण कहीं-कहीं त्रुटियाँ भी मिलती हैं किंतु इस विशाल साहित्य और कवि-स्वातंत्र्य की ओर जब हमारा ध्यान जाता है तो इस दिशा में इन्हें नगण्य कह देने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं होता।

सौष्टव

काव्य की भाषा के लिए शब्द-भण्डार और व्याकरण के समान ही सौष्टव का होना भी अनिवार्य है। "सौष्टव से हमारा अभिप्राय भाषा के उस सौंदर्य से है जो सामान्यतः उसके विभिन्न अवयवों के औचित्य

तथा प्रसाधन के अतिरिक्त तद्गत बिंब की ग्राह्यता और आह्लादकता के साथ भी विशेष संबंध रखता है।”¹ अर्थात् सौष्टव भाषा को समग्र रूप में आकर्षण के योग्य बनाना है। इस कार्य में उसके सहायक बनते हैं— शब्द के प्रसाधक तत्त्व अर्थात् शब्दालंकार, अर्थ के प्रसाधक तत्त्व अर्थात् अर्थालंकार, बिंब के स्वरूप को विविध प्रकार से स्पष्ट करने एवं सजाने वाली शक्तियाँ अर्थात् अभिधा, लक्षणा और व्यंजना और शब्दार्थ का समन्वित रूप से सौंदर्यवर्धन करने वाले गुण, रीति और वृत्ति। संक्षेप में कह सकते हैं कि बिंब अथवा भाव के अनुरूप शब्द और अर्थ का उचित एवं काव्यशास्त्रसम्मत सुंदर प्रयोग ही भाषा-सौष्टव का निर्माण करता है।

अलंकार

देव के काव्य में अलंकृति और सज्जा का कोई अभाव नहीं है। पद-योजना पर देव ने विशेष परिश्रम किया है जिसका सुपरिणाम वीप्सा और अनुप्रास के प्रयोगों में मिलता है जो भाषा को गति, झंकार एवं सस्वरता देते हैं—

वीप्सा

रीझी-रीझी रहसि रहसि हंसि हंसि उठै,
साँस भरि आँसू भरि कहत भई दर्ई।
चौकि चौकि चकि चकि औचक उचकि देव,
थकि-थकि बकि बकि उठति बई बई।
दुहुन के गुन रूप दोऊ बरनते फिरै,
धरत थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा मन मोहि मोहन मई मई॥

वीप्सागत ये आवृत्तियाँ भाषा में गति उत्पन्न कर रही हैं।

अनुप्रास

बारि की बूँदे चुबै चिलकैं अलकैं, छवि की छलकै उछली-सी।
अञ्चल झीनें झकैं झलकैं, पुलकैं कुच कन्द कदम्ब-कली-सी॥

अनुप्रास और वीप्सा के पश्चात् देव का प्रिय अलंकार यमक है। इसके प्रयोग से सर्वत्र ऐसी गति आई है कि इससे उत्पन्न संगीत कहीं-कहीं तो अनुप्रास से उत्पन्न झंकार को भी पीछे छोड़ गया है।

यौवन बनक पै कनक वसुधाधर
सुधाधर बदन मधुराधर अदुन्दरी।
वारियत वारि जनि वारियत देखे देव
पाय पारियत गुण रतन समुन्दरी॥

यहाँ यौवन और बनक में ‘बन’ की, बनक और कनक में ‘नक’ की वसुधाधर, सुधाधर और मधुराधर में ‘धुराधर’ की वारियत और वारि में ‘वारि’ की वारियत और पारियत में ‘रियत’ की आवृत्ति हुई है।

¹ रीतिकालीन कवियों का काव्यशिल्प, डॉ. महेन्द्र, पृ. 420

अर्थध्वनन

देव ने अपनी भाषा को और अधिक सुंदर बनाने के लिए अनजाने ही इस अलंकार को भी अत्यंत कौशल के साथ प्रयुक्त किया है। इस अलंकार के पोषक ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग करके देव ने अपनी अभिव्यक्ति को संगीत की दृष्टि से ही नहीं, अर्थ-व्यंजना की दृष्टि से भी अत्यंत समर्थ और सशक्त बना दिया है—

सहर-सहर सोधो सीतल समीर डोले,
घहर-घहर घन घेरि कै घहरिया।
झहर-झहर झुकि झीनी झरि लायो देव,
छहर-छहर छोटी बूंदन छहरिया।
हहर-हहर हँसि हँसि के हिंडोरे चढ़ी,
थहर-थहर तनु कोमल थहरिया।
फहर-फहर होत पीतम को पीत-पट,
लहर-लहर होत प्यारी की लहरिया॥

शब्द-शक्ति

काव्य में शब्दशक्ति का व्यापार जितना अधिक सबल होगा, उसकी रचना में उतनी ही अधिक प्रभावशक्ति होगी। क्योंकि इनमें कवि कभी अर्थ का संकोच करता है तो कभी विस्तार ताकि उसके मनःपटल पर विद्यमान चित्र का वैशिष्ट्य यथासंभव सही और प्रभावशाली ढंग से व्यंजित हो सके। वैसे तो देव ने अभिधा को सर्वोत्तम माना। अर्थात् “लक्षणा और व्यंजना के ऊपर अभिधा का महत्त्व प्रतिष्ठा शिल्प के ऊपर भाव का महत्त्व प्रतिष्ठा ही है, परंतु जिस प्रकार देव ने भाव को काव्य का सार मानते हुए भी व्यवहार-रूप में कला को उचित स्थान दिया है, इसी प्रकार उन्होंने लक्षणा और व्यंजना का भी उचित रीति से पूर्ण मनोयोग के साथ प्रयोग किया है।”

अभिधा

पाँयन नूपुर मंजु बजै कटि किंगनी की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत हियै दुलसै वनमाल सुहाई॥

सीधे-सादे शब्दों में ‘ब्रह्मदूलह’ का चित्र अभिधा का सफल उदाहरण है।

लक्षणा

भोरे हो भूरि भराई भरे अरु भाँतिन भाँतिन से मनु भाये।
भागु बड़ों वहि भावति को जेहि भावते लै रंगभौन बसाये॥
भेष भलोई भली विधि सों करि भूलि परे किंधौ काहू बुलाये।
लाल भले हौं भले सुख दीन्हों भली भई आजु भले बनि आये॥

अपराधी नायक के प्रति नायिका की ये (प्रशंसात्मक) उक्तियाँ कुछ और ही कह रही हैं।

व्यंजना

1. “रावरो रूप पियो अंखियान भरयो सो उबरयो सो ढरयो परै।”

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 234

2. “या तन ते बिछुरै तु कहा मनते अनतै जु बसौ तब जानो।”

प्रथम में प्रेम की तीव्रता एवं आधिक्य की व्यंजना है तथा द्वितीय में मार्मिकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि देव अभिधा के पक्षधर हैं तथापि लक्षणा द्वारा भाषा में वैदग्ध्य और समृद्धि के लिए तथा व्यंजना से वक्रता और धार के लिए उन्होंने इन दोनों का भी सफल प्रयोग किया है।

गुण

देव के काव्य में उपस्थित माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण भाषा-अलंकरण के सहायक बनकर आए हैं। माधुर्य का प्रयोग उन चित्रों में हुआ है जो अत्यंत मधुर एवं कोमल हैं। ओज का प्रयोग वहाँ है जो प्रकृतितः चित्त-विस्तारक हैं। प्रसाद गुण का प्रयोग साधारणतः सभी प्रकार के विषयों में हुआ है और ये परिमाण में सर्वाधिक हैं। “देव की नायिकाएँ तराशी हुई मूर्तियाँ हैं जिन्हें चित्रित करने के लिए सरस और मधुर शब्दावली ही उपयुक्त है। यों तो समस्त साहित्य ही प्रायः मधुररससिक्त है परंतु रूपवर्णन, जलविहार तथा नैनसमय में यह सरसता विशिष्ट रूप से दर्शनीय है।”¹ अर्थात् माधुर्य गुण की उपस्थिति दर्शनीय है—

‘पायनि नूपुर मंजु बजै कटि किंकनि के धुनी की मधुराई।’

किंकनी की ध्वनि की मधुरता प्रदर्शित करने के लिए अथवा उसे दुगुना करने के लिए अनुनासिक ध्वनियों की प्रधानता है।

ओज

देव के काव्य में मधुर वर्ण जहाँ-तहाँ स्वयंमेव उपस्थित हो जाते हैं तो पुरुष वर्णों को खोजना पड़ता है—

‘घटा घहराति बिज्जु घटा छहराति आँधी,
राति हहराति कोटि कीट रवि रुंज लौ।’

यहाँ ‘ट’, ‘ह’ और ‘र’ वर्णों की बहुलता ही ओज का सूचक है।

प्रसाद

ऐसे स्थलों पर देव ने सरल शब्दों का प्रयोग किया है जिनसे अर्थ प्रतीति भी सरल हो जाती है। सहज एवं स्वाभाविक वर्णों से युक्त एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

माखन के काज होत मात वाहि ठारे अंग
बाढ़त निपट छवि छोटनि चरत है।

+ + + + +
जननी के जी की जननी के नहिं जानै कोई,
कहि न सकत कर टारे न टरत है।

जसुमति मैया जवरई करि हारि रही,
कुंवर कन्हैया जबरई पकरत है॥

इसी प्रसंग में उस ‘कान्ति-गुण’ की चर्चा करना अनुचित न होगा जिसे डॉ. नगेन्द्र ने ‘पालिश’ अर्थात् शब्दगत औज्वल्य एवं मसृणता के अर्थ में स्वीकार किया है। “रीति युग ने हमारी भाषा को जो सबसे

¹ देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, डॉ. राज बुद्धिराजा, पृ. 207

बड़ा वरदान दिया वह यही औज्वल्य और मसृणता है। इस युग के कवियों ने सूर, तुलसी, नन्ददास आदि से प्राप्त भाषा को मानो खराद पर चढ़ा-चढ़ाकर चिकना और समतल बना दिया। देव की भाषा में यह गुण रीतिकाल के अन्य कवियों से भी अधिक मिलता है। उनके शब्दों में उज्वल वर्णों का प्राचुर्य है। उनका खुरदरापन प्रयत्नपूर्वक दूर कर दिया गया है।” इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

आई बरसाने तैं बुलाई वृषभानु सुता,
 निरखि प्रभानि प्रभा भान की अथै गई।
 चक चकवानि के चकाये चक-चोरन सों,
 चौकत चकोर चका चौंध सो चकै कई।
 + + + +
 कंजनी कलिन-मई कुंजनि अलिन मई,
 गोकुल की लिन नलिन मई के गई।

रीति

रीति का अर्थ वृत्ति अर्थात् गुण-विशेष की व्यंजक वर्ण-योजना से ले तो देव की रचनाओं में कोमला वृत्ति का प्राधान्य मिलेगा। इसके साथ ही मधुरा और परुषा का प्रयोग भी कम नहीं हुआ है। प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण संबंधी उदाहरण इसकी पुष्टि में देखे जा सकते हैं।

मुहावरें और कहावतें

मुहावरों और कहावतों का प्रयोग देव की भाषा में मिलता है क्योंकि ये दोनों प्रत्येक जीवित भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं। यद्यपि इनके मूल में ‘लक्षणा शक्ति’ काम करती है तथापि इनके प्रयोग से उत्पन्न भाषागत सौंदर्य कुछ और ही होता है—मुहावरे भाषा में चलतापन और कहावतें उसमें प्रभावकता लाती है। देव के काव्य में ये दोनों वाक्य का सहज अंग ही बनकर आए हैं, स्वतंत्र चमत्कार बनकर नहीं आए। कहीं-कहीं तो ऐसे मुहावरे पकड़ में भी नहीं आते।

“जोबन आयो न ‘पाप लग्यो’ कवि देव रहें गुरु लोग रिसोहै।”
 चाह भई फिरों या चित्त मेरे की “छांह भई फिरों नाह के पीछे।”
 ‘जगर-मगर’ आपु आवति दिवारी सी।’

कहावतों का प्रयोग मुहावरों की अपेक्षा कम हुआ है किंतु यहाँ भी स्थिति मुहावरों जैसी है अर्थात् वे आरोपित नहीं हैं—

‘नख-सिख राई में सुमेक दिखराई देत।’
 ‘देव-निसाकर ज्योति जगै न जगै जुगनून को पुंज उजेरो।’
 ‘ओस की आस बुझे नहीं प्यास बिसास डसै जनि काल-फनिंद के।’

इस समग्र विवेचन के पश्चात् यह तो निश्चित है कि देव का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उन्हें कभी भी शब्दों की कमी नहीं पड़ी। शब्द भण्डार की दृष्टि से देखें या अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से लचीले प्रयोगों की दृष्टि से, कभी भी कवि असमर्थ नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि रीतिकाव्य के विशेषज्ञ डॉ. नगेन्द्र इनके भाषा-अधिकार के विषय में—यह निर्णय देते हैं—“कठिन से कठिन तुकान्त का निर्वाह

¹ देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 230

जिस सफाई और सरलता से किया गया है उससे उनके भाषाधिकार में संदेह नहीं रह जाता। तुकान्त ही क्यों अनुप्रास के विभिन्न प्रयोगों, यमक, आवृत्ति आदि सभी का जिस स्थिर एवं नियमित रूप से प्रयोग हुआ है, वह भाषा पर व्यापक अधिकार के बिना संभव नहीं था।”

छंद विधान

देव के कलापक्ष का परीक्षण करते हुए छंद विधान की परीक्षा न की जाए तो अधूरापन लगेगा। रीतिकाल के अंतर्गत ऐसे अनेक आचार्य कवि हुए हैं जिन्होंने छंद-निरूपण भी अपने ग्रंथों में किया है। देव भी इसका अपवाद नहीं हैं। ‘शब्दरसायन’ में छंदों का विवेचन इसका प्रमाण है। देव काव्य में उपलब्ध छंदों के आधार पर कहा जा सकता है कि इन्होंने कवित्त, सवैया और दोहा का प्रयोग सर्वाधिक किया है। वैसे तो कवित्त का स्वाभाविक प्रवाह ओज के अधिक अनुकूल है क्योंकि इस छंद में विस्तार काफी है किंतु देव ने इस छंद को शृंगार के ढाँचे में ढाल लिया है। इसके लिए कभी देव ने कोमल वर्णों का प्रयोग किया है तो कभी वीप्सा अलंकार का, कभी अनुप्रास युक्त पदों की आवृत्ति की तो कभी लघु अक्षरों एवं ए, ल, ओ आदि कोमल स्वरों का प्रयोग। कवित्त के भेदों में से देव ने 31 वर्ण के मनहर का प्रयोग सर्वाधिक किया। 33 अक्षरों का कवित्त भी लिखा जो ‘देव घनाक्षरी’ के नाम से प्रचलित हुआ। इसी प्रकार सवैया के मत्तगयन्द रूप को देव ने पूर्ण मनोयोग के साथ अपनाया। सात भगण और दो गुरु वाले इस छंद की एक झलक इस प्रकार है—

मूरति जो मनमोहन की, मनमोहनि के, थिरू, है थिरकी सी।

‘देव’ गोपाल के बोल सुने, छतियाँ सियराति सुधा छिरकी सी॥

नीके झरोखे है झाँकि सकै नहिं नैनन लाज घट धिरकी सी

पूरन प्रीति हियै हिरकी, खिरकी खिरकी न धिरै घिरकी सी॥

इसके अतिरिक्त सिद्धांत-प्रतिपादन में देव ने दोहा और सोरठा का प्रयोग भी किया है।

देव की कला के विभिन्न सोपानों की परीक्षा करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव मूलतः कवि हैं। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। उन्हें न तो भावों की कमी है और न ही शब्दों की। अर्थात् अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच गहरा तालमेल है। उनका काव्य ‘प्रेम’ की नींव पर टिका है इसलिए बिंब-विधान, प्रतीक विधान, अप्रस्तुत विधान भाषा और छंद-विधान-सभी ने इस निर्माण में योगदान दिया है। उनकी कला की परिपक्वता एवं माधुर्य ने उस असफलता को सफलता में बदल दिया है जो इन्हें लक्षण-ग्रंथों में लक्षणों-उदाहरणों का मेल बिठाते हुए मिली थी।

सहायक ग्रंथ सूची

1. रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र
2. देव और उनकी कविता, डॉ. नगेन्द्र
3. देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, डॉ. राजबुद्धिराजा
4. हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्यकाल : रीतिकाल, डॉ. महेन्द्र कुमार
5. रीतिकालीन शृंगार भावना के स्रोत, डॉ. सुधीन्द्र कुमार
6. रीतिकालीन रीतिकवियों का काव्य शिल्प, डॉ. महेन्द्र कुमार

कवि पद्माकर : जगद्विनोद

आचार्य पद्माकर

डॉ. सरला चौधरी

(क) रीतिबद्ध काव्य-परम्परा में पद्माकर का स्थान तथा आचार्यत्व

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-क्रम में जहाँ रीतिकाल का वास्तविक आविर्भाव उससे एक सौ वर्ष के काव्य-प्रयत्नों की परिणति का सूचक है वहाँ उसके उत्कर्ष से अवसान तक की पचास वर्ष की अवधि उसकी उपसंहार प्रक्रिया की द्योतक है। सामान्यतः रीतिकाल का समय संवत्-1700 विक्रमी से संवत् 1900 तक माना जाता है। स्वाभाविक रूप से ऐसी धारणा बनती है कि रीतिकाव्य का आरम्भ संवत् 1700 से होता है और इन दो शताब्दियों के मध्य में उत्कर्ष और अन्तिम में उसका अवसान हुआ होगा। लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है। हिन्दी साहित्य के अन्य कालों के काव्य पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक काल की पृष्ठभूमि में कोई-न-कोई एक बड़ा साहित्यकार किसी परम्परा का प्रवर्तन करता है और प्रायः उस युग से पूर्व का ही व्यक्ति होता है। पुनः उस काल का विकास आरम्भ होता है और जिसे अवसान-काल माना जाता है वह उस युग का चरम उत्कर्ष बिन्दु होता है। रीतिकाल में जिस साहित्यिक दृष्टिकोण की रूपरेखा निर्धारित हुई उसका एक व्यापक पृष्ठाधार था। वह एक प्राचीन परंपरा का नियमित विकास था। रीतिबद्ध काव्य-परंपरा का उपक्रम हमें उसके आरंभ समय संवत् 1700 से ही एक शती पूर्व दृष्टिगोचर होता है जब कृपाराम ने विक्रमी संवत् 1598 में हित-तरंगिणी की रचना की। संवत् 1650 में आचार्य केशवदास द्वारा रीति-शैली की प्रौढ़ कृतियाँ 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' रची गईं। रीतिकाव्य परंपरा का वास्तविक विकास 18वीं शताब्दी के आरंभ में चिन्तामणि द्वारा रचित लक्षण-ग्रन्थ 'कवि कुल कल्पतरु' से माना जाता है जिसे कुलपति, श्रीपति, सोमनाथ, देव, सूरति मिश्र आदि आचार्यों ने उत्तरोत्तर पुष्ट किया। 19वीं शताब्दी में जगतसिंह, जसवन्त सिंह, रसिक गोविन्द और अमीरदास आचार्यों ने प्रौढ़ रीतिग्रंथों की रचना करके रीतिकाव्य-परम्परा को श्रेष्ठता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

रीतिबद्ध काव्य-परम्परा के विकास-क्रम को इन तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं—

1. उपक्रम (सन् 1600 से 1650 ई.)
2. विकास (सन् 1651 से 1850 ई.)
3. अवसान (सन् 1851 से 1900 ई.)

1. उपक्रम (सन् 1600 से 1650 ई.)

यद्यपि हिन्दी में रीतिकाव्य की परंपरा जयदेव के गीत-गोविन्द से होकर विद्यापति की कविता में आई थी, विद्यापति की पदावली में नायिका-भेद, नख-शिख, ऋतु-वर्णन, दूती शिक्षा, अभिसार आदि बड़े आकर्षक ढंग से वर्णित हैं तथा हिन्दी की रीतिबद्ध काव्य-परंपरा चिन्तामणि से प्रायः एक सौ पूर्व तो निश्चय ही आरम्भ हो चुकी थी। इस अवधि में रचित कतिपय ग्रंथ इस प्रकार हैं— हित तरंगिणी (कृपाराम,

1598), साहित्य-लहरी (सूरदास, 1607), रसमंजरी (नन्ददास, 1608), बरवै नायिका भेद (रहीम, 1640), नख-शिख (बलभद्र 1640)। यद्यपि इन ग्रंथों में काव्य के किसी एक ही अंग का विस्तृत वर्णन किया है तो किसी ने एक लघु अंग पर लक्ष्य मात्र प्रस्तुत किया तथापि इन्हें रीति शैली से रहित नहीं कहा जा सकता।

2. विकास (सन् 1651 से 1850 ई.)

हिन्दी में सर्वप्रथम विविधांग निरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'कविप्रिया' (1658) की रचना आचार्य केशवदास ने की। अतः इन्हीं से रीतिबद्ध काव्य-परम्परा का आविर्भाव मानना चाहिए। इन्होंने भामह, दण्डी, उद्भट तथा रुद्रट आदि संस्कृत के प्राचीन आचार्यों को अपना आधार बनाया। आचार्य केशव ने कविप्रिया के अतिरिक्त संवत् 1648 में 'रसिक प्रिया' नामक ग्रन्थ में रसों का स्वतंत्र विवेचन किया। इसी अवधि में अलक शतक (मुबारक, 1660) अलंकार-चन्द्रिका (गोप, 1670) सुन्दर शृंगार (सुन्दरकवि, 1688) षट्ऋतु वर्णन (सेनापति, 1700)।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित रीतिपरक अधिकांशतः एकांगनिरूपक थीं। उनमें शैली की परिपक्वता का अभाव था। अतः रीतिबद्ध काव्य का विकास-क्रम अनवरत रूप से चिन्तामणि से हुआ। चिन्तामणि (काव्यप्रकाश, 1700) कविकुल कल्पतरु (चिन्तामणि, 1746), रस-रहस्य (कुलपति 1726), भाव-विलास (देव, 1746), शब्द-रसायन (देव, 1746), रसिक रसाल (कुमारमणि, 1773), रसपीयूष निधि (सोमनाथ, 1794) आदि ग्रंथों में विविध काव्यांगों का निरूपण प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर किया। इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में संस्कृत काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों जैसी शैलीगत प्रौढ़ता का अभाव है। इन कवियों ने दोहाबद्ध लक्षण देकर उनके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि खण्डन-मण्डनपूर्ण सूक्ष्म प्रतिपादनयुक्त प्रौढ़ता के दिग्दर्शन इन कृतियों में न के बराबर तथापि हिन्दी काव्य-शास्त्र के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन विविधांग-निरूपक कृतियों के अतिरिक्त रीतिकाल के विकास-युग में एकांग-निरूपक ग्रंथों की भी रचना हुई। भाषा-भूषण (जसवन्त सिंह), ललित-ललाम (मतिराम), शृंगार-लता (सुखदेव), छन्दसार संग्रह (मतिराम), रस-रत्नाकर (सूरति मिश्र) आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

3. अवसान (सन् 1851 से 1900 ई.)

कविवर पद्माकर रीतिकाल के अन्तिम चरण के समर्थ और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न कवि थे। इन्होंने भी अनेक कृतियों की रचना कर रीतिबद्ध काव्य-परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी रचनाओं का उल्लेख विभिन्न इतिहास-लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। पद्माकर की कृतियों की सबसे अधिक संख्या काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में मिलती है—(1) अनूपगिरि बहादुर की विरुदावली, (2) ईश्वर पचीसी, (3) गंगा लहरी, (4) जगद्विनोद, (5) जमुनालहरी, (6) पद्माभरण, (7) प्रबोध-पंचाशिका, (8) राजनीति, (9) राम रसायन, (10) लिलहारी लीला, (11) विरुदावली (प्रतापसिंह विरुदावली)

इनकी समस्त कृतियों को कई दृष्टियों से वर्गीकृत किया जा सकता है। मौलिकता और अनुवाद की दृष्टि से इनकी कृतियों को मौलिक और अनुदित रूपों में रखा जा सकता है। काव्य-रूप की दृष्टि से इनकी रचनाओं को मुक्तक और प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भाव-पक्ष की दृष्टि से वीर, शृंगार और भक्ति इन तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम उनके वे प्रबन्धात्मक ग्रन्थ आते हैं जो आश्रयदाता की प्रशस्ति से सम्बद्ध हैं अर्थात् (1) प्रशस्ति काव्य (2) काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ (लक्षण ग्रन्थ) (3) भक्ति-वैराग्य-ग्रन्थ।

(1) प्रशस्ति काव्य

राज्याश्रय में रहने के कारण कवि पद्माकर ने दो प्रशस्तिपरक काव्य लिखे—(1) हिम्मत बहादुर विरुदावली (2) प्रतापसिंह विरुदावली। दोनों ग्रन्थों में एक सी ही विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। दोनों में वीररस की प्रधानता है। हिम्मत बहादुर विरुदावली में 6 छप्पय, 13 भुजंगप्रयात, 14 डिल्ला, 29 त्रिभंगी, 42 हाकल और 108 हरिगीतिका छन्द हैं। इसमें छन्दों की कुल संख्या 211 है। दो शैलियाँ प्रमुख हैं—वर्ण वृत्तों और मात्रा वृत्तों की। इस प्रबंध में आलंकारिक योजनाएँ भी यत्र-तत्र दृष्टव्य हैं। शब्दालंकारों की अपेक्षाकृत अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों का ज्यादा प्रयोग किया है। अप्रस्तुत के रूप में वर्षाकालीन सामग्री का अधिक प्रयोग है। हिम्मत बहादुर विरुदावली में 5 अंश हैं। पहले अंश में देवस्तुति है जिसमें हिम्मत बहादुर की विजय के लिए प्रार्थना है। दूसरे सर्ग में नायक की प्रशंसा है। गूजरो की पराजय, महाराज छत्रसाल के राज्यों पर अधिकार करने तथा नोने अर्जुनसिंह पर चढ़ाई का वर्णन है। तीसरे अंश में दोनों पक्षों की सेनाओं के परस्पर गोलाबारी करने एवं चौथे सर्ग में युद्ध का वर्णन है। पाँचवें सर्ग में हिम्मतबहादुर द्वारा नोने अर्जुनसिंह के नाश का वर्णन है।

इनका दूसरा प्रशस्ति काव्य प्रतापसिंह विरुदावली है। प्रायः इन दोनों ही रचनाओं में एक ही सी प्रवृत्ति देखने को मिलती है। प्रतापसिंह सूर्यवंशी, क्षत्रियों की कछवाहा शाखा के अन्तर्गत आते हैं। इनका शासन-क्षेत्र जयपुर था। इन्हें भी सिंधिया और होल्कर से तो लड़ना ही पड़ा था। इसी प्रकार की और भी अनेक छोटी-मोटी लड़ाइयों के कारण इन्हें अपने जीवन में व्यस्त रहना पड़ा था। ऐसे नायक को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत कृति की रचना की। पहली कृति के समान इसमें भी किसी प्रकार का सर्ग-विभाजन नहीं है। स्वयं कवि का कथन है कि ये विरुदावली काव्य ही है। प्रतापसिंह-विरुदावली में 4 अमृतध्वनि और 1 छप्पय मिलाकर 5 छन्द विरुदावली वर्णन के अन्त में पृथक् से रखे हैं। यह रचना 127 छन्दों में है। इनमें 4 गीतिका, 5 छप्पय, 8 पद्धरी, 15 नाराच, 33 त्रिभंगी और 52 भुजंग प्रयात हैं। वर्ण वृत्तों की संख्या अधिक हैं। प्रतापसिंह-विरुदावली का आधार कोई युद्ध नहीं है। वर्णन-मात्र के लिए युद्ध वर्णन-मात्र के लिए युद्ध वर्णन का निर्वाह किया गया है। पद्माकर के काव्य में प्रबन्ध कौशल का अभाव दिखाई पड़ता है। वे मुक्तक रचनाकार के रूप में अधिक सफल हैं। राजाश्रयों के बहुत परिवर्तन के कारण वे प्रशस्तिपरक मुक्तक ही लिखते रहे। कहा जाता है इन्होंने 'सवाई जयसिंह-विरुदावली' भी लिखी थी जो अप्राप्त है।

(2) लक्षण-ग्रन्थ

कालक्रम की दृष्टि से प्रशस्तिकाव्य के पश्चात् लक्षण-ग्रन्थों का स्थान आता है। इन्होंने दो लक्षण-ग्रन्थ लिखे— 'पद्माभरण' और 'जगद्विनोद'। पद्माभरण में केवल अर्थालंकारों का विवेचन है। इस रचना के लिए न केवल संस्कृत के 'कुवलयानन्द' ग्रन्थ को ही आधार बनाया गया है अपितु हिन्दी के रीतिकालीन ग्रन्थों में वैरी साल के 'भाषाभरण' को भी आधार बनाया है। संभवतः इसीलिए इन्होंने अपने इस ग्रंथ का नाम 'पद्माभरण' रखा। इन्होंने अलंकारों के उदाहरण के रूप में केवल अपनी ही रचनाएँ प्रस्तुत नहीं की, अपितु अन्य कवियों की भी रचनाएँ उद्धृत की। डॉ. ओम प्रकाश शास्त्री के शब्दों में 'पद्माभरण अलंकार-निरूपण का एक व्यवस्थित लघु-ग्रन्थ है'।

इनका दूसरा रीतिग्रन्थ है— 'जगद्विनोद' इस ग्रन्थ में नायिका-भेद का विस्तार से वर्णन है। अन्त में रस-विवेचन भी है। शृंगार का विस्तार से और अन्य रसों का संक्षेप में निरूपण है। 'जगद्विनोद' जयपुर के राजा जगतसिंह के नाम पर रखा गया है। यह ग्रन्थ अपने युग तथा परवर्ती काल में काव्य-शास्त्र का अध्ययन करने वालों के लिए प्रचलित ग्रन्थ रहा।

(3) भक्ति-वैराग्य-ग्रन्थ

जीवन के अंतिम दिनों में कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण इनका झुकाव भक्ति और वैराग्य की ओर अधिक रहा। इसी कारण 'यमुना लहरी', 'गंगा लहरी', 'प्रबोध-पचासा', 'ईश्वर पचीसी', 'लिलहारी लीला' जैसी रचनाएँ भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हैं। खोज-विवरण में 'यमुना-लहरी' के केवल 2 छन्द उद्धृत हैं इसलिए यह कोई स्वतंत्र रचना नहीं जान पड़ती। 'लिलहारी लीला' को आचार्य मिश्र पद्माकर की रचना नहीं मानते। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज के निरीक्षक का भी कथन है—'यह रचना पद्माकर की है या नहीं, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसकी भाषा उतनी मँजी हुई नहीं जितनी पद्माकर की अन्य रचनाओं की है। पद्य ढीले-ढाले हैं।'

'गंगा लहरी' पंडितराज-जगन्नाथ की संस्कृत 'गंगालहरी' के ढंग की है। इसमें गंगा का वर्णन न होकर प्रशस्ति और प्रार्थना है, जिसमें व्याजस्तुति शैली के एक से एक उदाहरण हैं। इसमें राम, कृष्ण और विष्णु को एक ही रूप में माना गया है। 'प्रबोध-पचासा' रचना ज्ञान-वैराग्य तथा भक्ति विषयक इक्यावन कवित्तों का संग्रह है। स्थान-स्थान पर कवि के कवित्व अथवा उक्तिभंगिमा के दर्शन होते हैं। 'ईश्वर पचीसी' 25 छन्दों की लावनी है। प्रत्येक पद का चौथा चरण इस प्रकार है— "अब बचन बिचारि कहै पद्माकर यह ईश्वर की माया है।" इस रचना में खड़ी बोली और सधुक्कड़ी भाषा के क्षेत्रीय और प्रादेशिक शब्दों के प्रयोग के कारण अधिकांश विद्वान् इसे पद्माकर की रचना नहीं मानते हैं। लेकिन इस कृति की एक-एक हस्तलिखित प्रति दत्तिया तथा जयपुर में मिली है। इन दोनों स्थानों से पद्माकर का सम्बन्ध रहा है, इसी कारण यह रचना पद्माकर की मानी जा सकती है।

'राम रसायन' रचना वाल्मीकि रामायण का अनुवाद है। इसमें दोहा, सोराठा, चौपाई और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग है। ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में छन्दोबद्ध प्रार्थना, कथा का सारांश और महात्म्य दिया गया है। इसमें महाकवि तुलसीदास की संस्कृत-श्लोक पद्धति का अनुगमन तो किया है लेकिन पद्माकर ने हिन्दी का हरिगीतिका छन्द संस्कृत साहित्य के लिए अपनाकर मौलिक प्रतिभा तथा नवीनता का परिचय दिया है। 'राजनीति की वचनिका' रचना संस्कृत के हितोपदेश का गद्य-पद्यमय अनुवाद है यह ग्वालिया के ऊदा जी ताँत्या दक्खिनी के अनुरोध पर लिखा गया—

ऊदाजी षट कै जु करि पद्माकर सों नेहु।

कह्यहु नीति की वचनिका भाषा करि रचि देहु।

वस्तुतः इन कृतियों से पद्माकर की प्रगाढ़ प्रतिभा का परिचय मिलता है। वे रीतियुग के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उनके काव्य में सेनापति के कवित्तों की गति, मतिराम की सुकुमार भाव-समृद्धि और देव की चित्रात्मकता के एक साथ दर्शन होते हैं। डॉ. उमाशंकर शुक्ल के शब्दों में "इन रचनाओं में पद्माकर की प्रतिभा त्रिपथगा की भाँति शौर्य, शृंगार और भक्ति की धाराओं में प्रवाहित हुई है। प्रवाह में

काव्योचित वक्रताओं की तरंगें प्रायः उच्छलित होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी समस्त रचनाओं में नादात्मक और चित्र योजनात्मक सौन्दर्य का स्वर भी गुंजरित हुआ है”।

पद्माकर का आचार्यत्व

रीतिबद्ध कवियों में आचार्य-कर्म की प्रमुखता निर्विवाद है। काव्यशास्त्र ज्ञाता तथा उसके कुशल व्याख्याता कवि को ही तत्कालीन विद्वत्-समाज में प्रतिष्ठा मिल पाती थी। अतः अनेक शुद्ध अनुभूतिशील रससिद्ध को भी आचार्य-कर्म में निरत होना पड़ा और जो मूलतः थे ही आचार्य प्रकृति और प्रतिभा के स्वामी। काव्यशास्त्र की प्राचीन संस्कृति परम्परा के पुनरुत्थान का श्रेय इन्हीं आचार्य-कर्म निरत कवियों को है।

व्युत्पत्तिजन्य अर्थ के अनुसार “आचार्य वह है जो स्वयं आचरण करता हुआ शिष्यों को भी आचार में नियुक्त करे, अन्यत्र ‘चिन’ धातु से इसकी व्युत्पत्ति मानते हुए ‘शास्त्रार्थ-संग्रहकर्ता विद्वान्’ को आचार्य की संज्ञा दी गई है। मनु के कथनानुसार—जो (विद्वान्) शिष्य को कल्प एवं रहस्य सहित वेदों की शिक्षा देता है उसे आचार्य कहते हैं।” सामान्यतः विद्वानों में मत-प्रस्थापक तथा मन्त्र व्याख्याता को आचार्य बताया गया है।

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—

- (1) उद्भावक आचार्य—भरत, भामह, वामन आनन्दवर्धन तथा कुन्तक आदि।
- (2) संग्रहकर्ता एवं व्याख्याता आचार्य—मम्मट, विश्वनाथ, विद्याधर, हेमचन्द्र आदि।
- (3) कवि शिक्षक आचार्य—अमरचन्द्र, राजशेखर आदि।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों को मुख्यतः द्वितीय वर्ग में ही रखा जा सकता है। उसके अन्तर्गत भी उनकी दो उपश्रेणियाँ हैं—(क) विविधाग-निरूपक (ख) एकांग निरूपक। रीतिकाल में काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के लिखने की परम्परा दो वर्षों तक निरंतर चलती रही। संस्कृत काव्यशास्त्रीय प्रशस्त परम्परा का अनुगमन ही रीतिकाल में हुआ। शैली का स्वरूप भी वही रहा। लक्षणोदाहरण शैली के ग्रन्थ ही अधिक लिखे गए।

कवि पद्माकर भी इस मोह से न बच सके। रीतियुगीन प्रवृत्ति के अनुसार आचार्यत्व प्राप्त करने हुए काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी लिखे। शास्त्र विमर्श का आधार लेकर इन्होंने दो ग्रन्थ लिखे—(1) जगद्-विनोद (2) पद्माभरण। पद्माभरण अलंकार-निरूपक लघु ग्रन्थ है जिसमें संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में प्राप्त अर्थालंकारों का विवेचन है। जगद्विनोद है तो नायिका भेद का ग्रन्थ लेकिन इसमें पूरे रसचक्र का निरूपण है। इसमें शृंगार के समूचे अनुभावादि का विवरण है। कवि का स्पष्ट कथन है—

नव रस में जु सिंगार सिरैं कहत सब कोई।

सु रस नाइकानाइकहि आलंबित है होइ॥

(जं.-8) पृ. 80

रीतिकालीन कवियों ने रस और नायिका भेद के ग्रन्थों के लिए संस्कृत के तीन ग्रन्थों को आधार बनाया। विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण, भानुदत्तकृत रस तरंगिणी और रस मंजरी। रसतरंगिणी में रस का विवेचन है और रस मंजरी में नायिका-भेद वर्णित है। पद्माकर ने इन्हीं दोनों ग्रन्थों को आधार बनाया। जगद्विनोद में 731 छन्द हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीकृष्ण वन्दा और आश्रयदाता जगत सिंह की महिमा का

गुणगान है। इसके उपरान्त 468 छन्दों तक नायिका भेद तथा बाद के 469 से 731 तक के छन्दों में रस-विवेचन है। अतः पहले उनके नायिका-भेद का विवेचन करेंगे।

नायिका-भेद-

स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण नैसर्गिक हुआ करता है अतः किसी भी पुरुष का किसी स्त्री के प्रति अनुराग हो जाना स्वाभाविक ही है। शृंगार रस के प्रसंग में यही नारी नायिका कहलाती है। पद्माकर ने 'जगद्विनोद' में नायिका का लक्षण कुछ इसी प्रकार से ही दिया है-

रस सिंगार को भाव उर उपजत जाहि निहारि।

ताहि कों कबि नाइका बनरत बिबिध बिचारि।।

ज. 11, पृ. 81

भानुदत्त मिश्र ने रसमंजरी में कर्म के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किये हैं-स्वकीया, परकीया और सामान्या। वय के आधार पर उन्होंने स्वकीया के तीन भेद किये हैं-मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा (प्रगल्भा)। मुग्धा वह स्त्री है जिसके शरीर में यौवन और काम के संचार का आरम्भ ही होता है। मध्या में काम अपेक्षाकृत अधिक होता है पर साथ में उतनी ही लज्जा भी होती है। प्रौढ़ा में लज्जा की अपेक्षा काम की मात्रा अधिक होती है। वह समस्त काम-कलाओं में (केवल अपने पति के साथ) पारंगत होती है। इन तीनों के भेद हैं (1) ज्ञान यौवना (2) अज्ञात यौवना। अपने यौवन के आगमन का बोध होने पर मुग्धा 'ज्ञात यौवना' और न होने पर 'अज्ञात यौवना' कहलाती है। मान के आधार पर मध्या और प्रौढ़ा के तीन-तीन भेद हैं-धीरा, अधीरा, धीराधीरा। पति के अपराध पर अपने कोप को 'मध्याधीरा' व्यंग्य द्वारा, मध्या-अधीरा कठोर वचनों द्वारा तथा मध्याधीराधीरा वचन और आँसुओं द्वारा प्रकट करती है। प्रौढ़ा-धीरा अपने क्रोध को प्रकट करने की बजाय रति से उदास रहती है, जबकि प्रौढ़ा अधीरा पति का तर्जन-ताड़न करती है। प्रौढ़ा धीराधीरा रति से उदास रहने के साथ-साथ तर्जन-ताड़न भी करके अपना क्रोध दिखाती है। पति-प्रेम के आधार पर दो और भेद हैं-ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा। जिस पर पति का प्रेम अधिक हो वह ज्येष्ठा तथा जिस पर अपेक्षाकृत कम हो वह कनिष्ठा कहलाती है।

परकीया के भी उन्होंने दो भेद किये हैं। प्रथम के आधार पर पुनः दो भेद बताए-(1)परोढ़ा अर्थात् पति के अधीन (2)कन्यकी अर्थात् माता-पिता आदि गुरुजनों के अधीन। दूसरे प्रकार (मान) के आधार छः भेद हैं-(1)गुप्ता (2)विदग्धा (3)लक्षिता (4)कुलटा (5)अनुशयना (6)मुदिता। दशा के अनुसार भानुदत्त ने नायिकाओं के तीन भेद किये-(1)अन्य संभोग दुःखिता (2)वक्रोक्ति गर्विता (3)मानवती। वक्रोक्ति गर्विता के दो भेद किए-प्रेम गर्विता और सौन्दर्य गर्विता। अवस्था के आधार पर रसमंजरीकार ने स्वकीया, परकीया और सामान्या के आठ-आठ भेद किए हैं-(1)प्रोषित पतिका (2)खण्डिता (3)कलहान्तरिता (4)विप्रलब्धा (5)उत्का (6)वासक-सज्जा (7)स्वाधीन पतिका (8)अभिसारिका। गुण के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद किए-उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

कवि पद्माकार ने भानुदान मिश्र के इस नायिका-भेद वर्णन को कतिपय परिवर्तन के साथ यथावत् ग्रहण किया है। यथा मुग्धा का लक्षण देखिए-

झलकत आवै तरुनई नई जासु अँग-अँग।
मुग्धा तासों कहत हैं जे प्रबीन रस रंग॥

(ज-21) पृ. 83

1. (तत्रांकुरित यौवना मुग्धा)। (रसमंजरी) पृ.-7
2. विश्रब्ध नवोदा का लक्षण-
पति की कछु परतीत उर धरै नवौदा नारि।
सो विम्रब्ध नवोद तिय बरनत बुद्धि बिचारि॥
(सैव क्रमशः सप्रश्रया विश्रब्धनवोदा)।

(रसमंजरी), पृ.-8

यहाँ प्रथम उद्धरण में पद्माकर ने अंकुरित यौवन के लिए 'तरु नई नई' पद का प्रयोग किया है, जो यौवन के प्रस्फुटित होने के समीप तक पहुँचा देता है। इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में भानुदत्त मिश्र ने नवोदा का वर्णन करने के पश्चात् यह बताया है कि धीरे-धीरे क्रमशः जब वह पति पर विश्वास करने लगती है तब विश्रब्धनवोदा कहलाती है। पद्माकर ने सैव के स्थान पर नवौदा का प्रयोग कर दिया है और क्रमशः सप्रश्रया के लिए कछु परतीति का प्रयोग किया है। 'कछु' शब्द इस प्रसंग में कालक्रम का सूचक है जिससे विश्रब्धनवोदा के लक्षण में कवि की वही सूक्ष्म दृष्टि दिखाई पड़ती है जो भानुदत्त क्रमशः सप्रश्रया द्वारा अभिव्यंजित करना चाहते हैं। परन्तु जहाँ कवि को संस्कृत लक्षण का अनुवाद करने में कठिनाई लगी वहाँ अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसकी व्याख्या को ग्रहण करना ही उचित समझा 'कुलटा' का लक्षण देखते ही बनता है—

पुरुष अनेकन सों जु तिय राखति रति की चाह।
कुलटा ताहि बखानहीं जे कबीन के नाह॥

(ज. 108) पृ.-102

कहीं-कहीं आवश्यकता पड़ने पर लक्षण और नायिका की चेष्टाओं के उल्लेख-दोनों से काम चलाया है जैसे 'अधमा' का लक्षण रसमंजरीकार ने इस प्रकार दिया—

हितकारिण्यपि प्रियतमे ऽहितकारिण्यधमां

रसमंजरी, पृ. 160

कवि पद्माकर ने 'हितकारिण्यपि प्रियतमे' का अनुवाद दोहे के प्रथम चरण में कर दिया है, दूसरे चरण में इसके अहित शब्द के लिए 'सरोस' शब्द का प्रयोग किया है जिससे 'अधमा' की चेष्टा सम्बन्धी वृत्ति का बोध होता है। 'अधामा' का लक्षण देखिए—

ज्यों ही ज्यों पिय हित करत त्यों त्यों परति सरोस।
ताहि कहत अधमा सुकनि नितुराई की कोस॥

(ज-278) पृ.-141

वास्तविकता यह है कि संस्कृत समास प्रधान भाषा है और ब्रजभाषा व्यास-प्रधान। इन दोनों भाषाओं की प्रकृति भिन्न होने के कारण अनुवाद करना सरल नहीं। इसलिए पद्माकर के 'जगद्विनोद' में भानुदत्त के लक्षणों के सभी शब्दों का निर्वाह पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाया। 'परकीया' नायिका का लक्षण तो और भी दोषपूर्ण प्रतीत होता है—

होइ जु तिय परपुरुष रति परकीया सो बाम।

(ज-78) पृ.-96

अप्रकट पर पुरुषानुरागा परकीया

रसमंजरी, पृ. 50

रसमंजरीकार उस स्त्री को परकीया कहते हैं जो परपुरुष के साथ गुप्त रूप से (अप्रकट) प्रेम करती है लेकिन पद्माकर का कथन है कि पर पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री परकीया कहलाती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि फिर 'सामान्या' को किस आधार पर अलग किया जाए क्योंकि परपुरुष से तो वह भी प्रेम करती है। अतः यह लक्षण भ्रामक और दोषपूर्ण है। लेकिन अधिकांश रूप से इनके लक्षण सुबोध और संक्षिप्त हैं। इस संदर्भ में पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन उल्लेखनीय है—

“संस्कृत में सूत्रशैली का ग्रहण होने से थोड़े में काम चल सकता है। हिन्दी वालों ने एक प्रकार से टीका-भाष्य करके विषय को सरल बनाया है। अष्ट नायिका में 'प्रोषितपतिका' के अंतर्गत प्रवत्स्यपतिका, प्रवत्स्यपतिका, प्रोषित पतिका और आगतपतिका को ग्रहण किया है।”

हिन्दी वालों ने इन्हें सरल बनाने के लिए पृथक् कर दिया। किसी ने प्रवत्स्यपतिका को ही लिया, प्रवत्स्यपतिका को नहीं लिया। किसी ने सबको गृहीत किया। इस प्रकार 10 के स्थान पर 11 तक हो गई। पद्माकर ने प्रवत्स्यपतिका को ग्रहण नहीं किया।

जहाँ तक उदाहरण पक्ष का प्रश्न है वह असंदिग्ध रूप से सराहनीय है। पद्माकर रससिद्ध कवि पहले थे और लक्षणकार बाद में। नायिका-भेद के उदाहरणों में कवि का मन अधिक रमा है। कई स्थलों पर तो एक उदाहरण ने देकर अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जैसे—'प्रोषित' का लक्षण देकर उसके चार उदाहरण दिए हैं। 'प्रौढ़ा अधीस' के उदाहरण में भी कवि की सूझ-बूझ, स्पष्टता और सरलता का परिचय मिलता है—

रोस करि पकरि परोस तें लियाई घरै
पी कों प्रानप्यारी भुजलतानि भरै भरै।
कहै पद्माकर न ऐसो दोस कीज्यो फिरि
सखिन समीप यों सुनावति खरै खरै।
प्यौ छल छपावै बात हँसि बहरावै तिय
गदगद कंठ दृग आँसुन झरै झरै।
ऐसी धनि धन्य धनी धन्य है सु वैसो जाहि
फूल की छरी सों खरी हनति हरै हरै।।

(ज-70) पृ.-94

कवि पद्माकर के इस छन्द में 'ए ऐसो दोष कीजै फिरि' शब्दों से नायक का दोष, जो लक्षण की दृष्टि से सार्थक है— स्पष्ट लक्षित होता है, साथ ही ऐसे काम को समाज की दृष्टि से दोष भी बतलाया है। प्रिय के लिए 'प्यौ' शब्द का प्रयोग सात्विक भाव के आवेग स्वरभंग का सूचक है। इस उदाहरण में दोष, रोष, तर्जन, ताड़न सभी स्पष्ट हैं।

नायक-भेद

नायिका के पश्चात् शृंगार रस का दूसरा आलम्बन है नायक। संस्कृत आचार्यों ने नाटक अथवा महाकाव्य में विशिष्ट गुणों को होना अनिवार्य माना है जिससे वह प्रत्येक व्यक्ति के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बन सके। पद्माकर ने भी इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए नायक के गुणों का इस प्रकार से वर्णन किया है—

सुंदर गुणमंदिर जुवा जुवति बिलोकै जाहि।
कबिता राग रसज्ञ जो नायक कहिये ताहि॥

(ज-281) पृ.-142

भानुदत्त ने अपनी रसमंजरी के अन्तर्गत नायक के तीन सामान्य भेदों का उल्लेख किया है—पति, उपपति और वैशिक। स्त्री के साथ विधिवत् विवाहित पुरुष 'पति', उसे समाज की मर्यादा से भ्रष्ट कर अपने प्रेम में फँसाने वाला 'उपपति' तथा अनेक वैश्याओं से प्रेम करने वाला 'वैशिक' कहलाता है। स्वभाव के आधार पर पति के चार प्रकार किए हैं—अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट। सदा एक ही स्त्री से प्रेम करने वाला 'अनुकूल', सभी स्त्रियों के साथ समान और सहज अनुराग रखने वाला 'दक्षिण' स्त्रियों से कपट द्वारा प्रेम करने में पटु 'शठ' और बार-बार रोकने पर भी निःशंक होकर अपराध करने वाला 'धृष्ट' होता है। वैशिक के तीन भेद किए—उत्तम, मध्यम और अधम। नायक के साथ रसमंजरीकार ने उसके सहायकों का भी वर्णन किया है, ये हैं—पीठ मर्द, विट, चेट और विदूषक। कुपित स्त्री का प्रसादन करने वाला पीठमर्द, कामकलाओं में कुशल विट, नायक-नायिका को मिलाने में चतुर चेट तथा अंगादि की विकृति द्वारा हँसाने वाला विदूषक कहलाता है।

पद्माकर ने नायक-भेद विवेचन में 'पति' का लक्षण भानुदत्त की रसमंजरी के लक्षण का यथावत् अनुवाद है—

विधिवत्पाणि ग्राहकः पतिः

(रसमंजरी, पृ. 181)

जो विधि सों ब्याहो तियनि सोइ पति सब ठौर।

(ज-284) पृ.-142

संक्षिप्तीकरण हेतु कई स्थलों पर कवि ने दो लक्षण एक दोहे में दे दिए हैं—

जो पर बनिता तें बिमुख सु अनुकूल सुखदानि।

जु बहु तियन कों सुखद राम सो दक्षिण गुनखानि॥

(ज-288) पृ. 143

पद्माकर ने इन चार भेदों के अतिरिक्त अन्य दृष्टिकोणों से भी नायकों के विभिन्न भेदों का वर्णन किया है जैसे पति, उपपति, वैशिक, मानी, वचन चतुर तथा क्रिया चतुर। इन व्यापक भेदों के अतिरिक्त प्रोषित और अनभिज्ञ नायकों का भी वर्णन किया है।

शृंगार-रस के उद्दीपन-विभाव के अंतर्गत पद्माकर ने नायक के सखा, नायक-नायिका की सखी, दूती आदि का वर्णन किया है। पद्माकर ने रसमंजरीकार की तरह सखा के चार भेद माने हैं—पीठ मर्द, विट, चेट तथा विदूषक। लेकिन सखी के भेदों का उल्लेख नहीं किया। सखी के कार्यों में कवि ने मंडन, शिक्षा,

उपालंभ तथा परिहास का वर्णन किया है। पद्माकर ने उत्तम, मध्यमा और अधमा तीन प्रकार की दूतियाँ बतलाई हैं। इसके अतिरिक्त नायिका के स्वयंदूतीत्व का भी वर्णन इस दोहे में किया है—

आपुहि अपनो दूतपन करै जु अपने काज।
ताहि स्वयंदूती कहत ग्रंथन में कबिराज॥

(ज-377) पृ.-160

पद्माकर के नायक-भेद सम्बन्धी उदाहरण भी सहज और सुबोध हैं। ऐसा कोई छन्द नहीं जो लक्षण के अनुकूल न बैठता हो। दक्षिण नायक का उदाहरण देखिए—

निज निज मन के चुनि सबै फूल बिनौ इक बार।
या कहि कान्ह कदंब की हरषि हलाई डार॥

(ज-292) पृ.-144

कदम्बी की डाल पर चढ़कर अपनी प्रियतमाओं के प्रति पक्षपातहीन होकर प्रसन्न करने के लिए नायक की दक्षिणता की सुन्दर भावोत्पत्ति दृष्टव्य है। नायक के उदाहरण में भी कवि की भाव-गहनता और विलक्षण प्रतिभा के दर्शन होते हैं—

जगत बसीकरन ही हरन गोपिक के
तरुन त्रिलोक में न तैसी सुंदराई है।
कहै पद्माकर कलानि को कदंब
अवलंबन सिंगार को सुजान सुखदाई है।
रसिक सिरोमनि सुरागरतनाकर है
सील गुन आगर उजागर सुखदाई है।
ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार
नंद को कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई है॥

(ज-282) पृ.-142

यहाँ ठाकुर-ठसक का संयोग देखते ही बनता है। नायिका-भेद की तरह नायक-भेद के उदाहरण भी कवि के सक्षम कवित्व के परिचायक हैं।

रस-विवेचन

संस्कृत काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत रस का शास्त्रीय विवेचन सर्वप्रथम भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र में मिलता है। भरत के पश्चात् रस की स्थिति श्रव्य-काव्य में भी स्वीकार की गई। रसवादी आचार्यों ने शृंगार-रस की मार्मिकता से प्रभावित हो अन्य काव्य-रसों की अपेक्षा इसके विवेचन पर अधिक ध्यान दिया। विश्वनाथ के समय तक शृंगार-रस के सभी अंगों का सूक्ष्म और प्रौढ़ चित्रण किया, साथ ही सुबोधता और सरसता प्रदान की। भानुदत्त ने रसतरंगिणी और रसमंजरी में इसका विशेष ध्यान देते हुए स्वरचित उदाहरणों का समावेश कर दिया। रीतिकालीन कवियों ने इसी रस-विवेचन की प्राचीन परम्परा को अपनाते हुए साहित्य-दर्पण रस-तरंगिणी और रस-मंजरी ग्रन्थों को आधार बनाया। पद्माकर ने भी इन्हीं तीन ग्रंथों को रस-विवेचन का आधार बनाया। डॉ. बच्चूलाल अवस्थी ज्ञान के शब्दों में पद्माकर का जगद्विनोद ही ऐसा ग्रंथ है जो काव्यशास्त्र की मान्यताओं का संस्पर्श करते हुए रस की सामग्री आदि इकट्ठा कर देता है।

पद्माकर की रस-सम्बन्धी मान्यता भरत की परम्परा से ही ली गई है जहाँ विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति मान्य है। पद्माकर रस-निष्पत्ति की व्याख्या नहीं करते, 'आनंद' शब्द से उसे कहकर भर देते हैं, उनके अनुसार विभावादि-वृन्द मिलकर स्थायी भाव को पूर्णता देते हैं और यही पूर्णता स्थायी को रसरूपता देती है। वे विभावादि से रस की निष्पत्ति उस प्रकार नहीं मानते जैसे दीपक से घट की निष्पत्ति (प्रतीति) होती है, अपितु दूध के दधि-रूप में परिणत होने के समान स्थायी भाव की रस-रूप में परिणत मानते हैं—

मिलि बिभाव अनुभाव अरु संचारिन के बृंद।
परिपूरन थिरभाव जो सु रसरूप आनंद॥

(ज-608) पृ.-207

शास्त्रों के अनुसार रस का सबसे बड़ा बाधक है 'स्वशब्द वात्यत्व' अर्थात् शृंगार, हास्य आदि शब्दों के कह देने से रस-प्रतीति नहीं होती अपितु बाधा पड़ती है लेकिन पद्माकर इसे स्वीकार नहीं करते। इन्होंने भावों को स्वशब्द द्वारा वाच्य बनाने का काम अनेक स्थलों पर किया है। जैसे हास्य रस का उदाहरण हास-सामग्री नहीं दे पाता अपितु स्वतः हास का आलम्बन बनकर रह गया है—

हसि हसि भागै। देखि दूत है दिगंबर कों
पाहुनी जे आवें हिमाचल के उछाह में।
कहै पद्माकर सु काह सों कहैं को कहा
जोई जहाँ देखे सो हँसेई तहाँ राह में।
मगन भएई हसैं नगन महेस ठाढ़े
ओरौ हँसैं येहू हसाहस के उमाह में।
सीस पर गंगा हँसैं भुजनि भुजंगा हँसैं
हास ही को दंगा भी सु नंगा के बिबाह में।

(ज-673) पृ.-221

यहाँ आलम्बन महादेव हैं जिन्हें शब्दभेद से तीन बार नगन कहा गया, उनका स्वरूप चित्रण नहीं है। उद्दीपन का भी कोई विधान नहीं है। चौथे चरण में गंगा, सर्प आदि आश्रय हो गए हैं, उनमें अनुभव मात्र दिखाया गया है। हँसने वाले तो सभी हैं— पाहुनी, राह चलते। हास का दंगा ही खड़ा हो गया है। 'हास' शब्द आ जाने से 'स्वशब्द वाच्यत्व' दोष है। महादेव को नंगा देखकर ये भी हँसे, सभी हँस पड़े। ऐसा कह देने से तो हास का कोई स्वरूप सामने नहीं आता। इस उदाहरण की अपेक्षा पद्माकर का दूसरा उदाहरण जो दोहा छन्द में वह सटीक है—

कर मसूर नाचत नगन लखि हलधर को स्वाँगा।
हसि हसि गोपी फिरि हसै मनहु पिये सी भाँगा॥

(ज-674) पृ.-221

भावों और रसों के विवेचन के प्रसंग में भाव और रस का नाम आ जाना दोष माना गया है। लेकिन हिन्दी के अधिकांश रचयिताओं ने भावों या रसों का नाम लेना बहुत आवश्यक समझा है।

आचार्य पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तो इनके नायिका भेद और रस-विवेचन के बारे में स्पष्ट कहा—“पद्माकर का नायिका-भेद निरूपण तो बहुत कुछ ठिकाने का है, पर रस और भाव निरूपण वैसा उत्तम नहीं है, जैसा होना चाहिए।”

वस्तुतः कवि पद्माकर ने संस्कृत के दो ग्रन्थों भानुदत्त मिश्र कृत रस-मंजरी, रसतरंगिणी दो ग्रन्थों का आश्रय लेकर नायिका-भेद और रस-निरूपण कर अपने ‘शास्त्र कवि’ का परिचय दिया। हिन्दी-साहित्य के रीतिकाल में रीतिबद्ध रचना करने वाले जो रचयिता हुए उनके संबंध में यही धारणा बद्धमूल है कि वे तत्त्वतः कवि थे, आचार्य नहीं। अपनी काव्य-कला के प्रदर्शन के लिए उन्होंने लक्षण-ग्रन्थ लिखे। लेकिन वास्तविकता यह नहीं। कवि पद्माकर ने रीतियुगीन प्रवृत्ति के अनुसार ‘आचार्यत्व’ पद प्राप्त करने हेतु काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ ‘जगद्विनोद’ ग्रन्थ लिखा। इनके लक्षण इतने स्पष्ट हैं और इनके उदाहरणों में ऐसा अच्छा समन्वय है कि अन्यत्र वैसा प्रायः सर्वत्र नहीं मिलता। ऐसा संतुलित प्रयास हिन्दी में कम है। इसी कारण प्राचीन काल के अन्य कवियों की अपेक्षा ‘जगद्विनोद’ का प्रचार अधिक हुआ। पद्माकर ने लक्षण तो अवश्य संस्कृत के ही अनुवाद या छाया रूप में रखे, पर उदाहरण अधिकतर अपने हैं। लक्षणों की भाषा सुबोध है और उदाहरणों की वाग्योग से संघटित। ऐसी संघटना भी आचार्यत्व का लक्षण ही है। अतः कहा जा सकता है पद्माकर आचार्य रूप में अन्यतम हैं।

(ख) जगद्विनोद का प्रतिपाद्य, सौन्दर्य-बोध (लोकशास्त्रगत)

जगद्विनोद का प्रतिपाद्य : कवि का वर्ण्य-विषय केवल प्रकृति-जगत् और मानव मन ही नहीं, मानव-मन के अन्तर्गत उठने वाले विविध भाव भी हैं। कवि मनोभावों को साकार और जीवन्त रूप में प्रस्तुत करता है। वस्तुतः मनोभावों, मनोवृत्तियों एवं मनोवेगों की कोई सीमा नहीं। वह युग-धर्म से प्रभावित होता है। कवि पद्माकर भी युग-सीमा का उल्लंघन नहीं कर सके और युग की बँधी-बँधाई लीकों पर ही चलते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक-अभाव के कारण इन्हें दर-दर भटकना पड़ा और एक राजा को छोड़ दूसरे राजा की शरण में जाना पड़ा। वे किसी एक ही दरबार में अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे, आर्थिक कमी ने ही उनकी प्रतिभा को मानों कुण्ठित कर दिया और वे खुलकर रीति-परम्परा से आगे न जा सके। यही कारण है कि उनकी कविता का विस्तार बहुत अधिक नहीं। शृंगार, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, वीर आदि को छोड़कर अन्यत्र इनका मन नहीं रमा। ‘जगद्विनोद’ एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है अतः इसका मूल प्रतिपाद्य है— ‘काव्यांग-निरूपण’ जिसमें विस्तार से नायिका-भेद और रस-विवेचन है। (इसकी चर्चा पहले पाठ—‘पद्माकर का आचार्यत्व’ में विस्तारपूर्वक की गई है)

जगद्विनोद के उदाहरण पक्ष में शृंगार, भक्ति, वैराग्य और प्रकृति की झलक देखी जा सकती है।

- (1) **शृंगार**— रीतिकालीन साहित्य में शृंगारिक भावना दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है। लक्षण ग्रन्थों के रूप में, दूसरे लक्ष्य ग्रन्थों में वर्णित-शृंगार भावना के रूप में रीतिकाव्य में दो प्रवृत्तियाँ-रीति निरूपण अथवा आचार्यत्व और शृंगारिकता-अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। सबसे अधिक इनकी वृत्ति शृंगारिक दृश्यों में रमी यही कारण है कि वे भव्य शृंगार चित्र विस्तृत रूप से प्रकट कर सके। यह युग-धर्म की भी माँग थी कि कवि अधिक से अधिक शृंगार-चित्र प्रस्तुत करे।

रीति कालीन काव्य में शृंगार-भावना नायिका-भेद के अतिरिक्त नख-शिख, ऋतु-वर्णन तथा बारह मासा आदि के रूप में वर्णित हुई है। नायिका-भेद वर्णन में मुक्त छंदों द्वारा शृंगार रस के

विभाव पक्ष का विशेष रूप से पोषण हुआ है। ऋतुवर्णन और बारह मासा-वर्णन शृंगार रस-विभावातर्गत उद्दीपन के रूप में किया गया है। यह वर्णन शृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग के अन्तर्गत हुए हैं। पद्माकर ने भी इसी परिपाटी का पालन करते हुए शृंगार का चित्रण किया है। इनके काव्य में शृंगार-चित्र नायकों की अपेक्षा नायिकाओं के मनोरम चित्र अधिक हैं। नायिकाओं के रूप का वर्णन इस छन्द में देखते ही बनता है—

सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंगरंग
 अंग संग फैलत तरंग परिमल के।
 बारन के भार सुकुमार को लचत लंक
 राजै परजंक पर भीतर महल के।
 कहै पद्माकर बिलोकि जन रीझैं जाहि
 अंवर अमल के सकल जल थल के।
 कोमल कोमल के गुलाबन के दल के
 सु जात गड़ि पाइन बिछौना मखमल के॥

(ज-12) पृ.-81

नायिका की सुकुमारता का चित्रण है। पर्यक के ऊपर विराजमान यह नायिका समूचे महल को सुवासित कर रही है। इसकी कमर बालों के भार को नहीं संभाल सकती। इसके चरण अत्यन्त सुकुमार हैं, इसी कारण अच्छी तरह चलने पर भी मखमल का बिछावन गड़ता है।

पद्माकर ने शृंगार रस का विस्तार के साथ वर्णन किया है। शृंगार रस का निरूपण इन शब्दों में किया—

परिपूरन थिर भाव रति सो सिंगार रस जानि।
 आलंबन उद्दीपन द्वै बिभाव उर आनि॥

(ज-614) पृ.-208

शृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग के द्वारा शृंगार-भावना को अभिव्यक्त किया। संयोग वर्णन बहुत ही सजीव एवं सरस है। उदाहरणत—

कल कुंडल जहं डुलत खुलत अलकावलि बिलुलित।
 स्वेद सीकरन मृदित तनक तिलकावलि सुललित।
 सुरतमध्य अति लसत हरष हुलसत चख चंचल।
 पद्माकर झपि उझनि उझापे झपि रहत दृगंचल।
 नित सो बिपरीत सुरति समय उस मुख सुख साधक जु सब।
 हरि हर बिरचिपुर उरगपुर सुरपुर लै कह आज अब॥

(ज-619) पृ. 208

चित्रात्मक शैली के माध्यम द्वारा उक्त छन्द में नायिका का सौन्दर्य शब्द-तूलिका से साकार हो उठा है। इनके शृंगार-वर्णन में नायिकाओं का अप्रतिम सौन्दर्य, उनकी सुकुमारता, सहज शृंगार नायक-नायिका का प्रेमालाप, चतुर प्रेमिकाओं की प्रगल्भता, प्रेमी-प्रेमिकाओं का पारस्परिक मिलन, आलिंगन-इन सभी के मनोरम चित्र जगद्विनोद में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। सुन्दर भावों और मार्मिक

दृष्टि से इनके वियोग शृंगार के छन्द भी दृष्टव्य हैं। वर्षा-ऋतु में विरह की अग्नि का प्रचण्ड रूप देखिए-

ज्यों ज्यों बरसत घोर घन घन घुमंड घहराइ।
त्यों त्यों परत प्रचण्ड अति नई लगन की लाइ॥

(ज-631) पृ.-211

विरह में नायिका को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। न घर सुहाता, न सुगन्ध से भरपूर उपवन। चाँदनी जो संपूर्ण जगत को मोहित करती है वह भी मन को नहीं सुहाती। न साँझ अच्छी लगती है, न दिन, न रात-

घर न सुहात न सुहात बन बाहिरहु
बाग न सुहात जे खुस्याल खुसबोही सों।
कहै पद्माकर घनेरे घन धाम त्यों ही
चंद न सुहात चाँदनी हूँ जग जोहि सौँ।
साँझ न सुहात न सुहात दिनमाँझ कछु
ब्यापी यह बात सो बखानत हौँ तोही सौँ।
रातहू सुहात न सुहात परभात आली
जब मन लागि जात काहू निरमोहि सौँ॥

(ज-661) पृ.-218

इस प्रकार जगद्विनोद में शृंगार-भावना नायिका-भेद और ऋतु वर्णन के माध्यम से मुखरित हुई है। इस का समर्थन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्पष्ट कथन है-“आचार्यत्व के पद अनुरूप कार्य करने में रीतिकाल के कवियों में पूर्ण रूप से कोई भी समर्थ नहीं हुआ। आचार्यत्व के रूप में पद्माकर ने जो कुछ भी करने की चेष्टा की है, वह नगण्य है। कवि के रूप में इनका रूप निखरा है। इसी रूप में इन्होंने रीतिकालीन दूसरी प्रवृत्ति-शृंगारिकता-का पूर्ण और समर्थ अंकन किया है।”

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी कहा-“शृंगार रस के प्रसंग में इनके अनुभावों, हावों और अंगज अलंकारों की योजना निस्संदेह बहुत उत्तम कोटि की हुई है।”

- (2) **प्रकृति** - पद्माकर प्रकृति की सर्वाधिक सुरम्य स्थली सागर में पैदा हुए। इनका अधिकांश जीवन प्रकृति के रम्य स्थलों-सागर, सुगरा, दतिया, बाँदा, जयपुर, बूँदी, उदयपुर आदि में व्यतीत हुआ। इसलिए इनके हृदय में प्रकृति के प्रति अनुराग स्वाभाविक था। 'पद्माकर' नाम भी कवि के प्रेम का द्योतक है। रीतिकालीन कवियों ने अधिकांशतः प्रकृति को उद्दीपन रूप में प्रयुक्त किया है लेकिन पद्माकर ने अपने स्फुट मुक्तक काव्यों में रीतिकालीन प्रकृति-वर्णन को सर्वाधिक प्रचलित पद्धति-'उद्दीपन रूप प्रकृति चित्रण' तक ही अपने को सीमित नहीं रखा अपितु आलम्बन रूप में भी प्रकृति का वर्णन किया। बसन्त, वर्षा, शरद-ये तीन ऋतुएँ अधिक प्रिय हैं इसलिए इनका व्यापक चित्रण किया है। बसन्त का उदाहरण दृष्टव्य है-

कूलन में केलि में कछारन में कुँजन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।

कहे पद्माकर परागन में पौनहू में
 पातन में पिक में पलासन पगंत है।
 द्वारे में दिसान में दुनी में देस देसन में
 देखौ दीपदीपन में दीपत दिगंत है।
 बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
 बनन में बागन में बगरयो बसंत है।

(ज-380), पृ.-161

एक-एक वस्तु और प्रकृति के एक-एक अंग को लेकर उस पर ऋतु विशेष का प्रभाव दिखाया है। ऋतु विशेष का प्रभाव प्रकृति के अंग अंग पर सूचित करने में जहाँ एक चित्र अंकित होता है वहीं ऋतु के शोभा-विस्तार का प्रभाव पाठक के मन पर छाप छोड़ देता है। इस प्रकार के प्रकृति के आलम्बन संबंधी वर्णनों में जहाँ आनुप्रासिक नाद-सौन्दर्य पाठकों के चित्त को चमत्कृत करता है तो दूसरी ओर प्रकृति का सुन्दर, सजीव, व्यापक चित्रात्मक रूप मन को प्रकृति की ओर आकृष्ट करता है। बसन्त ऋतु के आगमन पर कवि अलंकृत शैली के माध्यम से भेदकातिशयोक्ति के सहारे प्रकृति-परिवर्तन का वर्णन अत्यन्त चित्रात्मक ढंग से चित्रित किया है—

और भाँति कुंजन में गुंजरत भीरे भौर
 औरै डौर झौरन पें बौरन के वै गए।
 कहै पद्माकर सु औरै भाँति गलियान
 छलिया छबीले छैल और छबि छै गए।
 औरै भाँति बिहगसमाज में अवाज होति
 ऐसे रितुराज के आज दिन द्वै गए।

पद्माकर ने प्रकृति को स्वयं अनुराग की मूर्ति स्वीकारा है, उसे मस्ती से आपूर्ण बताया है, प्रेम की उन्मादकारी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया है, आनन्द की क्रीड़ा में निमग्न बताया है, मानव के प्रेम-व्यवहार को उद्दीपक एवं आश्रय दोनों तरह से चित्रित किया है। फलतः पद्माकर के एक ही छन्द में प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों रूप बड़े मादक, मोहक और स्मरणीय देखने को मिलते हैं। प्रकृति कवि को इतनी मंत्रमुग्ध करती है। हिंडोले-झूलने के वर्णन में वह हिंडोले के प्रत्येक अवयव को पुष्पों की सजावट से अलंकृत करता है। हिंडोला, उसकी डोर, उसके खम्भे, उसकी परिया, उसके फन्दे, उसके झॉलर, उसके फर्श-सभी पुष्पमय बनाए गए हैं परन्तु फूल का कोई संश्लिष्ट चित्रण नहीं, फूल चिपका भर दिया गया है—

फूल भरी भूलभरी फूलभरी फूलन में
 फूल ऐसी झूलत सु फूलों के हिँडोरे में।

(ज-436), पृ.-174

नाना ऋतुओं में प्रकृति के नाना उपकरणों की चर्चा कवि ने सुखद सामग्री के रूप में की है। वस्तुतः इन प्रसंगों में कवि ने विभिन्न ऋतुओं के अनुकूल अपने आश्रयदाता राजाओं की सुख-उपभोग की प्राकृतिक सामग्री जुटाई है, जिसका प्रयोजन केवल आश्रयदाताओं के लिए ऐन्द्रिक सुख की सामग्री जुटाना मात्र था। प्रकृति-क्षेत्र से जुटाई गई सुख-उपभोग संबंधी चित्र रीतिकालीन युग

की सामंती मनोवृत्ति, राजाओं के ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण तथा विलासितायुक्त जीवन पर प्रकाश डालते हैं। जैसे-ग्रीष्म ऋतु में पानी के फव्वारे, लहरें, नदियाँ, हिम, अंगूर, गुलाब, कमल की पँखुड़ियाँ आदि सुख के साधनों के रूप में सामग्री को जुटाया है।

पद्माकर के शीतोपचार की सामग्री साहित्य के क्षेत्र में अत्यधिक प्रसिद्ध है—

गुलगुली गिल में गलीचा में गुनीजन हैं
चाँदनी में चिकै में चिराकन की माला में ।
कहै पदमाकर त्यों गजक गिजा में सजी
सेजै में सुराही में सुरा में अरु प्याला में ।
सिसिर के पाला के न ब्यापत किसाला तिन्में
जिनके अधीन एते उदित मसाला में ।
तान तुक ताला हैं बिनोद के रसाला में
सुबाला में दुसाला में बिसाला चित्रसाला में ।

(ज-391) पृ.-165

रीतिकालीन प्रकृति-वर्णन की सर्वाधिक व्यापक प्रवृत्ति है। प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण जो पद्माकर में सर्वाधिक दिखाई पड़ता है। प्रकृति के उद्दीपन-वर्णन की शास्त्रीय पद्धति में संयोग के समय प्रकृति सुखदायी तथा विरह में दुखदायी प्रतीत होती है। कृष्ण के मिलने के कारण ताल-तमालों के वन, शरद-पूनम की रात, वृन्दावन की बीथियाँ और कुंज गोपियों को कितने सुखद, सम्मोहक प्रतीत होते हैं। इसका सजीव चित्र इस छन्द में दृष्टव्य है—

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै
वृन्दावन बीथिन बहार बंसीबट पै।
कहै पदमाकर अखंड रासमंडल पै
मंडित उमंड महा कालिंदी के तट पै।
छिति पर छान पर छाजत छतान पर
ललित लतान पर लाड़िली की लट पै।
छाई भली छाई यह सरदजुन्हाई जिहि
पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकट पै।।

(ज-388) पृ. 164

जो प्रकृति प्रेमी या प्रेमिका को संयोग में सुखद प्रतीत होती है, वही वियोग में भावना-भेद के कारण दुखद प्रतीत होती है। प्रकृति वही रहती है किन्तु उसका प्रभाव भिन्न हो जाता है। जैसे निम्न छन्द में गोपियाँ अपनी वेदना उद्धव से कहती हुए बसन्त की शोभा को कोसती हैं, किंसुक की लाल डालियाँ उन्हें अंगार के पुंज की तरह प्रतीत होती है, पलाश के वन उनके हृदय में आग लगाते हैं, कोयल की कूक उनके हृदय में आग की हुक उठाती है—

ए ब्रजचंद चलौ किन वा ब्रज लूकै बसंत की अकन लागी।
त्यो पदमाकर पेखौ पलासन पावकै सी मनौ फूकन लागी।

वै ब्रजवारी बिचारी बधू बन बावरी लौं हिय हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइनी ये सु कुह कुहू क्वैलिया कूकन लागी॥

(ज-383), पृ. 192

पद्माकर के लिए प्रकृति सौन्दर्य का अनन्त और अक्षय भंडार है, इसलिए नारी के रूप गुण, क्रिया, हाव, भाव आदि में सौन्दर्य लाने के लिए इन्होंने प्रकृति का उपयोग अलंकारों के रूप में स्थान-स्थान पर किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पद्माकर ने प्रकृति को आलम्बन-रूप, उद्दीपन-रूप, सुखोपभोगदायक सामग्री के रूप में, वातावरण के रूप में तथा-अलंकार-रूप में चित्रित किया है जो कवि की भावुकता और नूतन कल्पना के परिचायक हैं।

- (3) **भक्ति** – रीतिकाव्य की धमनियों में मुख्यतः बहने वाली भाव-सारिणी शृंगार-पूरित होते हुए उसकी शिराओं में भक्ति का संजीवन-रस बराबर संचरित रहा। डॉ. भगीरथ मिश्र ने 'हिन्दी-रीति-साहित्य' ग्रन्थ में इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा- 'सच तो यह है कि भक्ति का जो उन्मेष मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में हुआ था, उसका प्रभाव उत्तरार्द्ध में भी निःशेष नहीं हुआ था। परिस्थिति बदल जाने के कारण उत्तरार्द्ध में उतना जोर नहीं रहा, लेकिन भक्ति की प्रवृत्ति सर्वथा अंतर्हित नहीं हुई थी।'

पद्माकर का काव्य तीन प्रकार का है-प्रशस्ति काव्य, शृंगार काव्य और भक्ति वैराग्य काव्य। भक्ति वैराग्य काव्य जीवन की परिस्थिति की प्रेरणा से निर्मित काव्य है। 'प्रबोध-पचासा' और 'गंगा लहरी' इनके जीवन की सन्ध्या-बेला में ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति-सम्पन्न रचनाएँ हैं। कवि पद्माकर के हृदय में भक्ति-भावना ने कैसे जन्म लिया। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि वृद्धावस्था में पद्माकर को कुष्ठ-रोग हो गया था। वे ग्लानि से भर पतित-पावनी गंगा की शरण में गए और स्तुति-पूर्वक गंगा स्नान से उनका कुष्ठ रोग दूर हो गया। गंगा-लहरी के छन्दों में गंगा के प्रति उद्गार इनकी गम्भीर भक्ति-भावना से इसकी पुष्टि होती है। उस समय इन्हें दृढ़ विश्वास था कि गंगा माता इन्हें रोगमुक्त तो करेगी, साथ ही इनके सब पापों का भी पूर्णतया विनाश हो जाएगा। मार्ग में ही अपने पाप-पुंज को सम्बोधन कर पद्माकर ने स्पष्ट कहा-

एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि

गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

(गंगा लहरी-8) पृ. 255

वैसे भी पद्माकर ने अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह जगद्विनोद के आरम्भ में मंगलाचरण में नन्दनन्दन की स्तुति की है-

सिद्धिसदन सुंदरबदन नन्दनन्दन मुदमूल।

रसिक सिरोमनि साँमरे सदा रहहु अनुकूल॥

(ज-1) पृ. 80

स्पष्ट है कि पद्माकर एक भक्त कवि भी थे। राम का नाम न लेने का इन्हें पश्चात्ताप है—

भोग में रोग बियोग सँजोग में जोग में काय कलेस कमायो।
त्यौं पद्माकर बेद पुरान पढ़यो पढ़िकै बहुबाद बढ़ायौ।
दौरयो दुरास में दास भयो पै कहूँ बिसराम को धाम न पायौ।
कायो गमायो सु ऐस ही जीवन हाय में राम को नाम न गायौ॥

(ज-600) पृ. 207

भोग में रोग को पाया। संयोग में वियोग को पाया योग-साधन में काया का क्लेश पाया। वेद-पुराण पढ़कर ज्ञान का अभिमान हुआ और शास्त्रार्थ में स्वमत मंडन तथा परमत खंडन हेतु विवाद में लगा रहा। जीवन ऐसे ही गँवा दिया। कवि अखंड आनन्द प्रदाता राम का नाम न गाने पाया-इसका पश्चात्ताप है। ज्ञान-सम्पन्न होने पर कवि राम-नाम के महात्म्य को भलीभाँति समझ गए। दुःखमय संसार रूपी सागर को पार करने हेतु इष्ट श्री राम की भक्त-वत्सलता आवश्यक है। राम और कृष्ण में अभेद जानने और मानने वाले कवि पद्माकर ने अपने तमोमय हृदय में प्रकाश-पुँज श्री हरि को बसाने का उपाय खोजा—

ए ब्रज चंद गुबिंद गुपाल सुनौ न क्यों केते कलाम किये में।
त्यौं पद्माकर आनंद के नद हौ नंदनंदन जानि लिये में।
माखन चोरिकै खोरिन हूँ चले भाजि कछु भय मानि जिये में।
दूरिदूँ दौरि दुरयौ जौ चहौ तौ दुरौ किन मेरे अँधेरे हिण् में॥

(ज-561) पृ. 198

इन सब तथ्यों से स्पष्ट है कि आचार्य-कवि पद्माकर के काव्य में भक्ति-भाव का मनोरम, उदात्त और हृदय स्पर्शी वर्णन है।

(4) **वीर, नीति आदि इतर विषय**— रीतिकालीन काव्य के वर्ण्य-विषय और रस की दृष्टि से शृंगार तथा भक्ति के उपरान्त वीर का स्थान है। विभिन्न चरितकाव्य तथा राज प्रशास्तियाँ भी इसी में समाविष्ट हैं। वीरगाथा काल के पश्चात् वीरकाव्य का पुनरुत्थान इसी काल में हुआ। इस युग के दैनिक जीवन में जहाँ विलासिता का साम्राज्य था, वहाँ धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों की प्रेरणा स्वरूप यदा-कदा अनेक युद्धों के अवसर पर उपस्थित होते रहते थे। कहीं धर्मरक्षा इनका ध्येय था तो कहीं दम्भ के कारण अपनी आन और शान की रक्षा के लिए कभी-कभी आपस में गृहयुद्ध छिड़ जाते थे। इनमें अधिकतर युद्ध वीरकाव्य में वर्ण्य-विषय होकर आये। युद्धों के अतिरिक्त वीर और उदार व्यक्तियों के चरितमान में भी वीर रस का सुन्दर निरूपण हुआ है। कवि पद्माकर का भी प्रधान लक्ष्य रहा आश्रयदाताओं का प्रशस्तिपाठ। महाराज जयसिंह की दानवीरता का बखान निम्न छन्दों में दृष्टव्य है—

बकसि बितुंड दए झुंडन के झुड रिपु-
मुंडन की मलिका दई त्यौं त्रिपुरारि कों।
कहै पद्माकर करोरन के कोस दए
षोडसदू दीनों महादान अधिकारी काँ।

ग्राम दए धाम दए उदिक अराम दए
अन्नजल दीन्हो जगती के जीवदारी काँ।
दाता जयसिंघ दोय बातें तौ न दीनी कहूँ
बैरिन काँ पीठ और डीठि परनारी काँ।।

(ज-699) पृ. 226

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में “इनकी वीर रस की रचना परमार्थतः इनकी उन्मुक्त अभिव्यक्ति नहीं है।”

शृंगार काव्यांतर्गत नीति-सूक्ति का समावेश भी पद्माकर के काव्य में ‘बूंद’ रूप में देखा जा सकता है। नीतिकाव्य मात्रा में अधिक न होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टिकोण लिए हुए है। कवि का स्पष्ट मन्तव्य है कि यह सत्य है कि उसका कभी हित नहीं होता जो चार व्यक्तियों की बात को नहीं मानता।

साँचहूँ ताको न होत भलो जो न मानत है कही चार जनै की।।

(ज-166) पृ. 115

इन विषयों के अतिरिक्त त्यौहार आदि का चित्रण भी जगद्-विनोद में देखने को मिलता है। निम्न छन्द में ‘होली’ का रंगीन चित्र साकार हो उठा है—

भाल पै लाल गुलाल गुलाल सों गेरि गरै गजरा अलबेलौ
याँ बनि बानिक साँ पदमाकर आए जु खेलन फाग तौ खेलौ।
पै इक या छबि देखिबे के लिये मो बिनती कै न झोरन झेलौ।
रावरे रंग रँगी आँकियान में ए बलबीर अबीर न मेलौ।।

(ज-58), पृ. 91

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जगद्विनोद का मूल प्रतिपाद्य है—काव्यांग-निरूपण, जिसमें नायिका-भेद और सभी रसों को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। किन्तु विशेष-रूप से दृष्टि शृंगार पर ही केन्द्रित रही। उस युग की हवा भी शृंगार की दिशा में बह रही थी, यद्यपि लक्षण के कगारों में इनकी प्रतिभा बँधी हुई थी तथापि इसके कलेवर में इतर विषय-भक्ति, नीति, प्रकृति, वीर आदि का निखरा रूप लक्षित होता है। डॉ. उमाशंकर शुक्ल के शब्दों में “पद्माकर की प्रतिभा त्रिपथगा की भाँति शौर्य, शृंगार और भक्ति धाराओं में प्रवाहित हुई है।”

सौन्दर्य बोध (लोक तथा शास्त्रगत)

मानव सौन्दर्यापासक प्राणी है। कन्फ्यूशियस के अनुसार ‘संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो धन को भी उतना ही चाहता है जितना वह सौन्दर्य को चाहता है।’ सौन्दर्य वह अमूर्त तत्त्व है जो सम्पूर्ण जगत् भिन्न-भिन्न रूपों में मूर्तिमान है। वस्तु अथवा व्यक्ति मात्र में दूसरों को लुभाने वाला जो भी वैशिष्ट्य है वही सौन्दर्य है। यह वैशिष्ट्य रूप, गठन, वर्ण, स्वभाव किसी से भी सम्बद्ध हो सकता है। अतः सौन्दर्य की कोई एक परिभाषा देना संभव नहीं। मानव-मन भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार सौन्दर्य के भिन्न-भिन्न मानदंड निर्धारित करता है।”

रीतिकाव्य का सौन्दर्य-चित्रण बाह्यतः विभिन्न काव्यशास्त्रीय लक्षणों में बँधा होने के कारण अपनी नैसर्गिक गरिमा से बहुत कुछ दूर हटा हुआ-सा प्रतीत होता है। पद्माकर प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे किन्तु वे भी युग-सीमा के बन्धन में बँधे हुए थे। इन्हें जीविकोपार्जन के लिये आश्रयदाताओं के पास जाना पड़ता था। वे आश्रयदाता की रूप-दर्शन की चाह को काव्य द्वारा पूरा करते थे। पद्माकर के आश्रयदाता जयपुर के राजा जगत सिंह थे। उन्हीं की प्रशंसा हेतु काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'जगद्विनोद' की रचना की जो नायिका-भेद और रस-निरूपण का ग्रन्थ है। लक्षण तो पहले से ही निश्चित थे उसमें कवि-प्रतिभा दिखाने का अवसर न के बराबर था। उदाहरण पक्ष में कवि के सौन्दर्य बोध का दिग्दर्शन किया जा सकता है। अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति पद्माकर ने भी नारी के प्रकृत रूप में सौन्दर्य अधिक देखा। नारी के सम्पूर्ण शरीर में इतनी शोभा, इतना सौन्दर्य है कि उसके सामने प्रकृति की सुन्दरता हेय है। नारी के रूप में स्नान करना युगधर्म समझा जाता था। पद्माकर ने भी युग-धर्म का पालन किया। नारी के अंग-अंग में इतना अधिक सौन्दर्य है कि उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। उस पर प्रकृति का सुन्दर से सुन्दर रूप न्यौछावर किया जा सकता है। नारी के अधरों में जितनी लालिमा है, उतनी लालिमा प्रकृति के बिम्बफल अथवा कमल में नहीं। उसके मुख पर जितनी स्निग्धता, तरलता है, उतनी चन्द्रमा, कमल आदि में नहीं, उसके केशराशि में जितना सौन्दर्य है उतना काले-काले बादलों में नहीं। यह दृष्टि रीतिकाल के सभी कवियों की रही। पद्माकर भी इससे अछूते न रहे। जगद्विनोद में सर्वप्रथम नायिका का लक्षण देकर उसके रूप का चित्रण इस प्रकार किया—

जाहिरै जगत सी जमुना बूड़ै बहै उमहै वह बैनी।
 त्यों पद्माकर हीर के हारन गंग तरंगन काँ सुखदैनी।
 पाइन के रँग साँ रंगि जात सो भाँति ही भाँति सरस्वति सैनी।
 पैरे जहाँई जहाँ ब्रजबाल तहाँ तहाँ ताल मैं होत त्रिबैनी॥

(ज-434) पृ.-173

उसकी वेणी यमुना, उसके गले का हार गंगा तथा उसके लाल तलवे सरस्वती नदी का होना सूचित करते हैं। जहाँ-जहाँ बाला ताल में तैरती है, वहाँ-वहाँ त्रिवेणी का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है।

नारी के गौर शरीर पर श्वेत-बिन्दुओं को देख वे मंत्रमुग्ध हो गए और उन्हें लगा कि उसका शरीर जितना सुंदर है उतना किसी दूसरे का संभव नहीं। उसके अंग-अंग में जादू है मानो कामदेव ने स्वयं अपने हाथों से नारी को सँवारा हो। वह सबके हृदय को अपने वशीकरण मंत्र से आकृष्ट कर लेती है—

सोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी
 कौनहू सुमनवारी यों नहिं निहारी है।
 कहें पद्माकर त्यों बाँधनू बसनवारी
 वा ब्रजवसन वारी ह्यौ हरनहारी है
 सुबरनवारी रूप सुबरन बारौ सजै
 सुबरनवारी कामकर की सँवारी है।
 सीकरनवारी स्वेदसीकरवारी रति
 सी करनवारी सो बसीकरनवारी है।

(5-434) पृ.-73

पद्माकर ने नायिका-भेद में शुक्लाभिसारिका नायिका का जो वर्णन किया है, उसका रूप सौन्दर्य भी असीम है। उसका मुख चाँदनी को फीका कर देता है, उसके शरीर से निकलने वाली सुगंध वन, कुंज को सुगंधमय बना देती है उसके चरण इतने अधिक कोमल और रक्तिम हैं कि मानों मजीठ से भरा घड़ा लुढ़का दिया हो—

सजि बृजचंद याँ मुखचंद जाको
 चंद चाँदनी को मुख मंद सो करत जात।
 कहे पद्माकर त्याँ सहज सुगंध ही के
 पुंज बन कुंजन मैं कंज से भरत जात।

धरति जहाँई जहाँ पग है सु प्यारी तहाँ
 मंजुल मजाठे ही के माठ से ढरत जात।

(ज-245) पृ. 133

यहाँ 'सजि' शब्द के माध्यम से नारी के सौन्दर्य को चार चाँद लग गए हैं।

पद्माकर ने नायक-नायिकाओं के मानसिक सौन्दर्य पर भी ध्यान दिया। नायक-नायिका दोनों की मनःस्थितियों का रूप चित्रण किया। इनकी नायिका जहाँ नायक की प्रतीक्षा में रत और चिन्तित है वहाँ नायक भी नायिका के रूप दर्शन के लिए आतुर है। प्रेम का आदान-प्रदान उभय पक्षी है। नायिका की लज्जा और औत्सुक्य का सौन्दर्य भी कवि ने निम्न छन्द में सजीव रूप से उभारा है—

याँ अलबेली अकेली कहुँ सुकुमार सिँगारन कै चलै कै चलै।
 त्याँ पद्माकर एकन के उर में रस बीजनि बै चलै बै चलै।
 एकन साँ बतराइ कछु छिन एकन को मन लै चलै लै चलै।
 एक काँ तकि घूँघट में मुख मोरि कनैखिन दै चलै दै चलै।

(ज-109) पृ.-103

नायिका सुकुमारी कोमलांगी है जो देखता है वही मुग्ध हो जाता है पर नायिका के मन में संकोच है, झिझक है, किसी से बात नहीं करती, डरती है, इसलिए घूँघट का उपयोग कर कटाक्षपात करती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों रस के बीच बोती चलती है।

पद्माकर ने प्रकृति-सौन्दर्य का भी रसास्वादन किया। लेकिन इनकी दृष्टि प्रकृति में उतनी नहीं रमी जितनी नारी-सौन्दर्य में। यही कारण है इन्होंने प्रकृति के आन्तरिक सौन्दर्य का विश्लेषण नहीं किया। प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य पर इनकी दृष्टि पड़ी। रीति ग्रन्थों में प्रकृति-वर्णन उद्दीपन रूप में ही अधिक हुआ। पद्माकर ने इसी परम्परा का पालन करते हुए इस ग्रन्थ में षड्ऋतु वर्णन किया। वर्षाऋतु का उद्दीपन रूप में चित्रण निम्न छन्द में दृष्टव्य है—

चंचला चलाकैँ चहुँ ओरन तें चाहभरी
 चरजि गई ती फेरि चरजन लागी री।
 कहै पद्माकर लवंगन की लोनी लता
 लरजि गई ती फेरि लरजन लागी री।

घुमड़ि घुमड़ि घटा घन की घनेरी अबै
गरजि गई ती फेरि गरजन लागी री।

(ज-386) पृ. 163

इसी प्रकार बसंत, ग्रीष्म, शरद, हेमंत, शिशिर ऋतु का उद्दीपन रूप में वर्णन कर प्राकृतिक सौन्दर्य के शब्दचित्र उतारे हैं।

पद्माकर के सौन्दर्य-बोध में कतिपय विशिष्ट तत्त्व हैं जो इन्हें अपने युग के श्रेष्ठ कवियों से ही नहीं अपितु पूर्ववर्ती श्रेष्ठ कवियों से पृथक् पहचान बनाने में समर्थ हैं। सर्वप्रथम तो यह कि पद्माकर ने अपने युग के समस्त कवियों तथा पूर्ववर्ती विशिष्ट कवि तुलसी, सूर, जायसी आदि के भी विपरीत शरीर के अंगों और अलंकारों का बहुत कम उल्लेख किया है। पद्माकर के सौन्दर्य-बोध की दूसरी विशेषता यह है कि वह सर्वथा परिपूर्ण है। उनका सौन्दर्य-बोध धर्म, राष्ट्र एवं सामाजिक औचित्य से समन्वित है। यही कारण है कि उनके सौन्दर्य-बोध में धर्म का भी स्थान है और युद्ध का भी। जिस नारी के सुहाग और संभोग के इन्होंने इतने सरस, सलोने गीत गाये उसके सौन्दर्य की चरम-परिणति नारी के सती होने की लालिमा का भी इन्होंने इसी सौष्टव के साथ गान किया—

पाली पैज पन की प्रबेस करि पावक मैं
पौन तैं सिताब सहगौन की गती भई।
कहै पद्माकर पताका प्रेम पूरन की
प्रगट पतिव्रत की सौगुनी गति भई।
भूमिहूँ अकासहूँ पतालहूँ सराहूँ सब
जाको जस गावत पवित्र मो मती भई।
सुनत पयान श्री प्रताप को पुरंदर पै
धन्य पटरानी जोधपुर में सती भई॥

(ज-552) पृ.-196

इस संदर्भ में 'पद्माकर श्री' ग्रन्थ में तैलंग मालचन्द्रराव का कथन उल्लेखनीय है—“पद्माकर की सौन्दर्य-दृष्टि वस्तुओं के बाह्य रूप को भेदकर अन्तराल में प्रविष्ट हुई नर हो या नारी, प्रकृति हो या कोई वस्तु, पद्माकर की दृष्टि प्रायः ऊपर-ऊपर की ही रही। इनका भाव-जगत वायत्व और अतीन्द्रिय नहीं है। इन्होंने नर-नारी एवं प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया।”

पद्माकर की सौन्दर्य दृष्टि केवल आंगिक सुषमा में ही आबद्ध नहीं रही, अपितु आभूषणों में भी वह सौन्दर्य के दर्शन कर सकी। नायक जब नायिका के पास जाता है तो नायिका की दृष्टि नायक के आभूषणों पर पड़ती है और क्षण भर को खीझती है। नायक किस प्रेमिका के यहाँ होकर आया है। कारण, नायक के कुंडल, कलंगी, सिरपेच, पेच जो कान पर सुशोभित थे, मलिन दिखलाई पड़ रहे हैं, उसकी पगड़ी पर भी धूल पड़ी हुई है, गले का हार भी निष्प्रभ है। नायिका ने नायक के आभूषणों से भाँप लिया कि वह किसी प्रेमिका के साथ रमण कर के आया है—

गोचमंच कुंडल कलंगी सिरपँच पँच
पँचन तें खँचि बिन बँचे वारि आए हौ।
कहै पद्माकर कहाँ वा मूरि जीवन की

जाकी पगधूरि पगरी पै पारि आए हौ।
वे गुन बिसारि ऐसे बेगुन के हार अब
मेरी मनुहार काँ बृथा ही धारि आए हौ।
पासा सारि खेली कित कौन मनुहारिन साँ
जित मन हारि मनि हारि हारि आए हौ॥

(ज-169) पृ.-116

वास्तव में पद्माकर ने युग-सीमा में बँधे परम्परित और शास्त्रगत ढंग से नायक-नायिका के रूप-वैभव के चित्र खींचे हैं जो स्वतः सौन्दर्य के उदाहरण बन गए। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पद्माकर रीतिकाल के ऐसे प्रतिभासम्पन्न कवि हैं शास्त्रगत और लोकगत सौन्दर्य रूपी गंगा में जन-मानस डुबकी लगा भाव-विभोर हो उठता है। डॉ. नगेन्द्र का कथन भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है—

“इन रीतिकालीन कवियों के नयनों की प्यास अमित थी, वास्तव में इन कवियों से अधिक रूप पर रीझने की आदत और किस में हो सकती थी।”

अन्ततः पद्माकर के विषय में पांडेय लोचन प्रसाद के शब्दों में—

सागर तू गुन आगर, सुरस समास
पद्माकर यश-सौरभ, छबि आवास॥
कवि-कोविद-सद्वैद्य-रत्न का कोष।
मध्य देश का प्रतिभा मुकुर अदोष॥

भाषा-शिल्प

काव्य अनुभूतियों का प्रकाशन है। अनुभूतियों का प्रबल आवेग अभिव्यक्ति-कूलों के माध्यम से प्रवाहित होता है। अभिव्यंजना के तट-घाट ही भाव-सलिला को एक निश्चित दिशा की ओर उन्मुख करते हैं। अतः इनकी साज-सज्जा काव्य-कर्ता की रचना-प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है। अभिव्यंजना की समस्त प्रक्रियाएँ भाषा राह से चलकर पूर्ण होती हैं। विचारों को भली-भाँति प्रकट कर सकने की शक्ति जिस भाषा में जितनी अधिक होगी, उतनी ही वह भाषा उत्कृष्ट मानी जाएगी। शब्दों का चुनाव, वाक्यों का सुष्ठु न्यास और निर्माण जिस भाषा में उपयुक्त होगा, वही भाषा भाव प्रकट करने में अधिकाधिक समर्थ होगी। भाषा-शिल्प के अनिवार्य अंग है—भाषा, अप्रस्तुत-विधान, मुहावरे-लोकोक्तियों का प्रयोग, रीति वृत्ति गुण, छन्द, काव्य-रूप।

पद्माकर सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं। इनके अनुसार कविता, सगुन, सभूषण, सुभ, सरस, सुबरन, सुपद, सराग होनी चाहिए। उत्कृष्ट कविता तो प्रसादादि गुण युक्त, सालंकार, मंगलदायक, रसवती, उपयुक्त वर्ण-योजना तथा पद-विन्यास वाली, प्राजल और नाद-सौन्दर्यपूर्ण कहकर कवि ने कला-पक्ष संबंधी अपना दृष्टिकोण रखा। वर्ण-विन्यास, शब्द-योजना और छन्द-विधान पर पद्माकर ने अन्यत्र बल दिया।

भाषा

पद्माकर की भाषा सुमधुर ब्रजभाषा है जो इस महाकवि के काल में अत्यन्त उन्नत और प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। कहीं-कहीं प्राकृत, अपभ्रंश एवं पूर्वी भाषा का प्रयोग भी इनकी कविता में दृष्टिगोचर होता है। इनका शब्द-भंडार बहुत विस्तृत है। शब्दों की विविधता से इनकी भाषा में कृत्रिमता का

निवारण हुआ तथा चलतापन का गुण आया। इनकी भाषा का मेरुदण्ड ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार तद्भव शब्द है। जहाँ एक ओर प्रचलित तत्सम शब्दों का प्रयोग है तो दूसरी ओर प्राकृत तथा अपभ्रंश के शब्द जैसे-खग्ग, बग्ग, उदग्ग, धम्म रिति, फब्बै, आदि। प्राकृत भाषा के शब्द जैसे-नाह, ईछन, दोह, लोचन, शोभिजै, कहियत, करहिं रामहिं आदि शब्द इनकी भाषा में प्रयुक्त हुए हैं। इन्होंने सजीवता और चलतापन लाने के लिए अरबी-फारसी के उन शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है जो उस समय ब्रजभाषा में खप चुके थे और जिनका प्रयोग साधारणतः जनता जमकर प्रयोग करती थी। यथा- तखत, बखत, बुलन्द, वजीर, जालिम, जरूर, नुकता, फरद, साहिबी, हद, नफा आदि। पद्माकर भाषा की प्रकृति से भली भाँति परिचित थे। इसलिए इन्होंने विदेशी शब्दों को ब्रजभाषा के व्याकरण से अनुशासित किया है। विदेशी संज्ञा शब्दों से इन्होंने क्रियाएँ भी बनाई हैं लेकिन उन्हें ब्रजभाषा के व्याकरण के अनुरूप ढाला है। जैसे विदेशी संज्ञा शब्द लरजीपन से इन्होंने 'लरजना' क्रिया पद का निर्माण किया है।

वास्तव में तत्सम, देशज, जनजीवन में प्रचलित बोलचाल के शब्दों तथा जनता में अतिशय प्रचलित विदेशी शब्दों का प्रयोग करके इन्होंने भाषा सम्बन्धी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

सरलतम भाषा में कैसी मनोहर कविता हो सकती है इसका उत्कृष्ट उदाहरण निम्न छन्द में दृष्टव्य है—

हौं अलि आज बड़े तरीके भरिकै घट गोरस काँ पग धारो।
 त्याँ कब को धौँ खरोई हुतो पदमाकर मो हित मोहिनीवारो।
 साँकरी खोरि में काँकरी की करिचोट चल्थो फिरि लौटि निहारो।
 ता खिन लँ इन आँखिन तँ न कढ़यो वह माखन चाखन हारो॥

(ज-138), पृ. 109

कितनी सरल भाषा में आभीरबाल अपनी सखी से माखन-चाखनहार के प्रेम का वर्णन कर रही है। जिस प्रकार की मनोरम भाषा का प्रयोग आभीरी के मधुर मुख से होना चाहिए था, उसका पूर्ण निर्वाह किया है। यहाँ पाण्डित्य दिखाना कवि का अभीष्ट नहीं, स्वाभाविक लालित्य, मृदुता और मनोरमता है।

कवि पद्माकर की भाषा कोमल होने के साथ-साथ इतनी सजीव एवं ध्वन्यात्मक हो गई है कि वह सहज ही प्रत्येक श्रोता के हृदय में रसानुकूल भावोद्रेक करती है यथा—

चाँदनी के चौसर चहूँधा चौक चाँदनी मैं।
 चाँदनी सी आई चंद चाँदनी चितै चितै॥

(ज-528) पृ. 524

इन पंक्तियों में जिन सुमधुर ध्वनि करने वाले शब्दों की मधुर योजना की गई है वह श्रवण द्वारा आनन्द उठाने का विषय है, वर्णन का नहीं। इनकी भाषा में ध्वन्यात्मक अर्थ स्पष्ट करने की इतनी अधिक क्षमता है कि वह मूल अर्थ को, उसके शब्द को ध्वन्यात्मक अर्थ को पूर्ण उत्कर्ष तक ले जाने में सक्षम है। नादपूर्ण अथवा अनुकरणात्मक वर्ण-योजना से वातावरण, क्रिया और भाव का संप्रेषण किया गया है—

मोहिँ झकझोरि डारी कंचुकी मरोरि डारी।
 तोरि डोरी कसनि बिथोरि डारी बैनी त्योँ॥

(ज-89) पृ.98

झकझोरि, मरोरि, तोरि और बिथोरि क्रियाओं के उच्चारण से उनके कार्य ध्वनित होते हैं।

भाषा का एक अप्रतिम लक्षण उसकी चित्रात्मकता भी है। चित्रांकन-कौशल पद्माकर के भाषा-शिल्प की प्रमुख विशेषता है। मूर्ति-विधायिनी कल्पना इनके काव्य में स्वरूपांकन, मुद्रा-चित्रण, अनुभाव-विधान, हाव-योजना, आलंबनगत एवं उद्दीपन निरूपण और प्रसंग-नियोजन के अनेक सजीव, स्वाभाविक, प्रभविष्णु एवं मनोहारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। प्राजंल वाग्धारा, सरल शब्दावली और अनुकूल नाद-युक्त वर्ण-योजना ने इन चित्रों को और भी अधिक मर्मस्पर्शी बना दिया है। इस संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर का कथन दृष्टव्य है—“मेरा ख्याल है कि साहित्यिक चर्चाओं में पद्माकर को हम कुछ भूलते जा रहे हैं। जो लोग कविता के चित्र-पक्ष को ऊपर उठाना चाहते हैं उन्हें पद्माकरों के काव्य में अपने पक्ष की काफी सामग्री मिलेगी।”

बसन्त-उल्लास का बिम्ब दिखते ही बनता है जिसमें अनुप्रास द्वारा उत्कृष्ट नाद-सौन्दर्य तथा प्राजंलता का विधान है—

कूलन मैं केलि मैं कछारन में कुंजन मैं
 क्यारिन मैं कलित कलीन किलकंत है।
 कहै पद्माकर परागन मैं पौनहू मैं
 पातन मैं पिक मैं पलासन पगंत है।
 द्वारे मैं दिसान में दुनी मैं देस देसन मैं
 देखौ दीपदीपन मैं दीपत दिगंत है।
 बीथिन में ब्रज में नवेलिन मैं बेलिन मैं
 बनन मैं बागन मैं बगर् यो बसंत है॥

(ज-380) पृ. 161

पद्माकर ने लाक्षणिक शब्दों का भी प्रयोग किया है और अव्यक्त होने वाली कई भावनाओं को मूर्तिमान रूप प्रदान किया है। इनके लाक्षणिक प्रयोग सम्पूर्ण चित्र को सजीव बना देते हैं। वास्तव में पद्माकर की भाषा दीपमाला के समान समुज्ज्वल और जगमगाती हुई है। नीर और क्षीर के समान भाषा और भावों का इतना सुन्दर सम्मिश्रण है कि देखते ही बनता है। दोनों संयुक्त होकर एक प्रकार से एक हो गये हैं कि अलग उनका अस्तित्व ही नहीं। नायिका की प्रलाप-स्थिति का मार्मिक चित्रण देखिए—

आम काँ कहत आमली है आमली काँ आम
 आक ही अनारन काँ आँकिबो करति है।
 कहै पद्माकर तमालन काँ ताल कहै
 तालनि तमाल कहै ताकिबो करति है।
 कान्है कान्ह कान्हन त्याँ कहति कदंबन को
 भँटि परिरंभन में छाकिबो करति है।
 साँवरे जू रावे याँ बिरह बिकानी बाल
 बन बन बावरी लाँ बाकिबो करति है॥

(ज-664) पृ. 219

शब्दों द्वारा वर्ण्य-विषय के अनुकूल ध्वनि उत्पन्न कर देना, भावों का चित्र प्रस्तुत कर देना, शब्द-आवृत्ति के द्वारा रोचकता उत्पन्न करना इनकी अपनी विशेषता है। रोचकता लाने के लिए इन्होंने

विविध साधनों को अपनाया, जैसे एक ही शब्द को दूर तक ठहराना, झंकार उत्पन्न करने वाले वक्रोक्तिमूलक अलंकारों का प्रयोग तथा अनुनासिक वर्णमैत्री का प्रयोग।

संक्षेपतः इनका शब्दकोष समृद्ध और कोमलकांत पदावली से पूर्ण है। उसमें बोलियों, विभाषाओं और अन्य भाषाओं के प्रचलित, उपयुक्त शब्दों का समावेश है। समाहार, शक्ति, चित्रात्मकता और संप्रेषणीयता इनके कवित्व की विशिष्टताएँ हैं। लेकिन यह तथ्य ध्यातव्य है कि दूसरी भाषाओं के शब्दों का समावेश होने से कारक-चिह्नों और क्रिया के रूपों में भी परिवर्तन हुआ है। कवि-निरंकुशता के कारण भाषा सदोष हो गई है। अनुचित अनुप्रासों के बोझ से भाषा शिथिल पड़ गई है। कहीं-कहीं शब्द तोड़-मरोड़ दिए हैं जैसे चतुराई का चातुरी, मधुराई का माधुरी, गुप्त का गुपति, षट् का षष्टई कर दिया है। इन दोषों के होते हुए भी पद्माकर जैसा भाषा के प्रति सर्वस्व-समर्पण हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं है। तैलंग मालचन्द्र राव के शब्दों में “समर्थ, स्वच्छ, प्रौढ़, प्राञ्जल, सरल, स्फीत ब्रजभाषा लिखने वाले रीतिकालीन कवियों में भाषा की दृष्टि से पद्माकर का स्थान प्रथम श्रेणी के कवियों में माना जाएगा।”

गुण रीति वृत्ति

मम्मट ने गुण, रीति, वृत्ति को एक दूसरे का पर्याय मानते हुए उनमें अभेदत्व व्यक्त किया है। माधुर्य गुण वैदर्भी रीति तथा उपनागरिका वृत्ति, ओज गुण के साथ परुषा वृत्ति तथा गौड़ी रीति और प्रसाद गुण के साथ पाँचाली रीति तथा कोमलावृत्ति होती है। इनके काव्य में प्रधानता माधुर्य गुण की ही रही, यद्यपि प्रसाद और ओज गुण की झलक भी कहीं-कहीं देखी जा सकती है।

प्रसाद गुण-

हरष रोष अरु सोक भय धूमादिक तँ होत।

प्रगट नीर अँखियान मैं अश्रु कहत कबिगोत॥

(ज-416) पृ. 170

माधुर्य गुण-

सुभ सीतल मंद सुगंध समीर कछू छल छंद से द्वै गए हैं।

पदमाकर चाँदनी चंदहु वे कछु और ही डौरन वै गए हैं।

मनमोहन साँ बिछुर इत ही बनिकै न अबै दिन द्वै गए हैं।

सखि ये हम वे तुम वेई बने पै कछू के कछू मन है गए हैं॥

(ज-622) पृ.-208

ओज गुण-

सोहै अत्र ओड़े जे न छोड़े सीम संगर की

लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका मैं।

कहै पदमाकर त्यों हुंकरत फुंकरत

फैलत फलात फाल बाँधत फलंका मैं।

आगँ रघुबीर के समीर के तनै के संग

तारीदै तड़ाक तड़ातड़ के तमंका मैं।

संका दै दसानन काँ हंका दै सु बंका बीर
डंका दै बिजै को कपि कूदि परै लंका मै॥

(ज-690) पृ.-224

अप्रस्तुत विधान

पद्माकर ने अलंकार-निरूपण पर तो 'पद्माकर' नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना की, जिससे सिद्ध होता है कि वे कविता में अलंकार-योजना को महत्त्वपूर्ण मानते थे। जगद्विनोद में अप्रस्तुत विधान की सुन्दर और सहज योजना देखी जा सकती है। कवि का अलंकार-योजना काव्योत्कर्ष विधायिका ही हुई है जैसे वर्णानात्मक कवित्तों में अनुप्रास की दीर्घ शृंखला दृष्टिगोचर होती है। पद्माकर की अनुप्रास-प्रियता भी बहुत प्रसिद्ध है। शब्दालंकारों की इनके काव्य में भरमार है। यत्र तत्र सभी अलंकारों की छटा इनके काव्य में दृष्टव्य है, उदाहरणार्थ कतिपय अलंकार प्रस्तुत है-

अनुप्रास- सुन्दर सुजान सुखदान पति प्रीतम की

(ज-34)

चाँकी चकी चमकी चित मैं चुप हूँ रही चंचल अचंचलवारी।

(ज-38)

गोल गुलगादी गुल गिलमै गुलाब गुल

गजक गुलाबी गुल गिंदुक गुले गुलाप

(ज-209)

यमक- तन सुबरन बरन सुबरन उकति उठाह।

धनि सुबरनमय हूँ रही सुबरन ही की चाह॥

(ज-125)

नवल गूजरी अजरी निरखि अजरि सेज।

उदित ऊजरी रैन को कहि न सकत कछु तेज

(ज-184)

पुनरुक्ति प्रकाश-अंग अंग फैलत तरंग परिमल के

(ज-12)

घरी घरी घाँघरी परत ढीलियै जाति

(ज-31)

रूपक- बिरहानल की ज्वाल सो दावानल तँ मानबी

(ज-152)

चंदन की चौकी चारु चाँदी की चँगरे हैं

(ज-205)

उपमा- ज्यों मेहदी के पात मैं अलख ललाई होति

(ज-26)

कान्ह के कानन आँगुरी नाई रही लपटाइ लवंगलतासी

(ज-51)

- उत्प्रेक्षा-** सोभित संभु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मन माँटी
(ज-45)
तबहि तिया को तन भयो मनौ अधपक्यो पान
(ज-186)
- व्यतिरेक-** ऐसो अवलोकिबेई लाइक मुखारिबंद
जाहि लिखि चंद अरबिंद होत फीके हैं।
(ज-163)
- अपहृति-** किंसुक गुलाब कचनार और अनारन की
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।
(ज-382)
- सन्देह-** कैधौ सु बारि बिहारहिं मैं तन तेरो कदंब को हार भयो है।

इनका अप्रस्तुत विधान मर्मग्राहिणी दृष्टि और भाव-प्रेरित सूझ का परिचायक है। परम्परागत उपमानों के उचित प्रयोग के अतिरिक्त इन्होंने अपने अवलोकन के आधार पर अनुभव में आए हुए क्षेत्रों से अप्रस्तुत प्रयोग किये—जैसे 'ज्यों मेहदी', 'अधपक्यो पान' आदि।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ—

मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग ने इनकी भाषा को और अधिक जीवन्तता प्रदान की है। मुहावरे और लोकोक्तियों के अनायास प्रयोग इन पंक्तियों में दृष्टव्य है—

- मुहावरे-** रैन दिन चैन है न मैंन है हमारे बस (ज-176)
मो मन अटक्यो हार मैं अटक रह्यो कित यार (ज-203)
जै हैं न फेरि फिरि धर ऐ हैं सुगाँउ तँ बाहर पाँउन दैहँ (ज-253)
मेरें हियो कटिबे का कियो तेर कटाछ कटा करिबे काँ (ज-300)
चौरै चख चोटन चलाक चित्त चोरयो गयो
लूटी गई लाजँ कुल कानि को कटा भयो। (ज-402)
भाउते के उर लागी जऊ तऊ भाउती को मुख ह्वै गयो फीको (ज-414)
कैसे मन हाथ रहै साथ रहै सब साँ (ज-509)
त्यौं पदमाकर ता छिन तँ तिय साँ अँग अँग न जात सम्हारे। (ज-555)

लोकोक्ति-

- आपने हाथ साँ आपने पायँ पै पाथर पारि परयो पछितानँ (ज-180)
जो बिधि भाल मैं लीक लिखी सु बढाई बढै न घटै न घटाई (ज-466)

हिन्दी में लोकोक्तियों का प्रयोग करने में सबसे उत्कृष्ट ठाकुर कवि हुए हैं। उसी अंचल में रहने के कारण पद्माकर ने भी इनका प्रयोग अच्छा किया है। ठाकुर की भाँति इन्होंने लोकोक्तियों का समाहार 'सवैया' छन्द में ही अधिकतर किया है और उसके चौथे चरण में उन्हें रखा है।

छन्द-विधान- रीतिबद्ध कवियों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में विविध काव्यांग-निरूपण के अन्तर्गत पिंगल अथवा छन्द-निरूपण के लिए भले ही संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश के अनेकानेक छन्दों का सूक्ष्म अनुशीलन

किया होगा और लक्षणकार के रूप में विभिन्न मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों का सप्रयोग विवेचन भी। परन्तु स्वानुभूतियों के सहज प्रकाशन-हेतु अपनी पूर्ववर्ती सुसमृद्ध काव्य परम्पराओं में प्रयुक्त छन्दों के बन्धन में न बँधकर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण काव्य-रचना के लिए दोहा, कवित्त एवं सवैया जैसे छन्द अपनाए। इससे रीतिकवियों के बहिरंग-लक्षणकार-स्वरूप में शास्त्रीय आग्रह एवं अन्तरंग में कवि-रूप लक्षित होता है। 'जगद्-विनोद' में भी पद्माकर ने इन्हीं तीन छन्दों का प्रयोग किया है। लक्षण दोहा छन्द में दिए हैं और उदाहरणों में कवित्त और सवैया छन्दों को अपनाया। छन्द विधान में पद्माकर को सबसे अधिक सफलता कवित्त में मिली है। इनके सब कवित्त पिंगल की कसौटी पर खरे उतरते हैं। सर्वत्र लय और संगीतात्मकता का निर्वाह किया गया है। निर्बाध और गतिमान प्रवाह की योजना के लिए वर्णों और शब्दों का चुनाव और जड़ाव इतना सधा हुआ है कि उच्चारण करते समय वाणी अनायास ही एक से दूसरे पर फिसलती चलती है। शब्द-विन्यास की यह प्रतिभा पद्माकर की विशिष्टता है। इनके कवित्त के शब्द और शब्दानुक्रम बदले नहीं जा सकते। छन्दों की गति-यति-लय को भावानुकूल प्रवाहित करने के लिए छेकानुप्रास, वीप्सा और यमक का प्रयोग किया-

लै फिरकी सी फिरै थिरकी थिरकी खिरकी मैं

(ज-570) पृ.-169

यहाँ नायिका की गति व्यंजित है। यही शिल्प-विधान पद्माकर ने कवित्त की रचना में अपनाया। इसमें भी कवि को अपार सफलता मिली है। कवित्त और इनकी भाषा की स्वच्छता, सरसता, मधुरता और प्रवाहमयता के द्योतक हैं।

काव्य-रूप-

रीतिकवियों ने पूर्ववर्ती प्रबन्ध-रचना-परम्परा का सर्वथा परित्याग कर अपनी स्वतंत्र मुक्तक काव्य-शैली को ग्रहण किया। रीति-निरूपण हेतु रचे गए विविधांग निरूपक (जिनमें काव्य-स्वरूप, रस नायिका-भेद, शब्द शक्ति, अलंकार, गुण, दोष, छन्द आदि विविध काव्यांगों का विवेचन है) अथवा एकांग निरूपक ग्रंथ (जिनमें केवल किसी एक काव्यांग-रस, नायिका-भेद या छन्द आदि का विवेचन है) इन ग्रन्थों का काव्य-रूप मुक्तक ही है क्योंकि इनमें किसी प्रकार की पूर्वापर सापेक्ष कोई कथा नहीं। इनका प्रत्येक छन्द स्वतः संपूर्ण पूर्वापर-निरपेक्ष स्वतंत्र अर्थ का वाहक है। जगद्-विनोद भी एक विविधांग-निरूपक लक्षण ग्रन्थ है। इसका काव्य-रूप भी मुक्तक ही है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पद्माकर की भाषा प्रसाद-गुण युक्त और व्याकरण-सम्मत है। इनका शब्द-कोष समृद्ध और कोमलकान्त पदावली से पूर्ण है। इनकी भाषा में बोलियों और अन्य बोलियों के प्रचलित उपयुक्त शब्दों का उदार समावेश है। समाहार-शक्ति, चित्रात्मकता, संप्रेषणीयता इनकी विशिष्टता है। रीतिगुण, वृत्ति, शब्द-शक्ति का सफल प्रयोग है। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग ने इनकी भाषा को जीवन्तता प्रदान की है। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार-"यद्यपि काव्य का परिवेश एवं आयाम आज परिवर्तित हो गया है फिर भी ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने वाले कवियों के लिए पद्माकर की सरस भाषा आज भी आदर्श है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निम्न कथन कवि पद्माकर के भाषा-शिल्प पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालता है-

“भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर इनका अधिकार दिखाई पड़ता है। कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेम-मूर्ति खड़ी करती है; कहीं भाव या रस की धारा बहाती है। कहीं अनुप्रासों की मिश्रित झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीर-दर्प से क्षुब्धवाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है; और कहीं प्रशान्त सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन की विश्रान्ति की छाया दिखाती है। सारांश यह है कि इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रंथ

1. *रीतिकाव्य की भूमिका*- डॉ. नगेन्द्र
2. *मतिराम कवि और आचार्य*- डॉ. महेन्द्र कुमार
3. *पद्माभरण*-डॉ: ओमप्रकाश शर्मा शास्त्री
4. *रीतिकाव्य में स्वच्छन्दतावादी*- डॉ. सरला चौधरी
5. *आचार्य अमीरदास और उनका साहित्य*- डॉ. रामप्रकाश
6. *पद्माकरश्री*- तैलंग मालचन्द राव
7. *पद्माकर, व्यक्ति, काव्य और युग*- डॉ. उमाशंकर शुक्ल

कवि भूषण : शिवा बावनी (संपूर्ण)

(क) वीरकाव्य-परम्परा में भूषण का वैशिष्ट्य

(स्व.) डॉ. शुभलक्ष्मी वत्स
एसोसिएट प्रोफेसर
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

वीरता का भाव वैदिक युग में प्रशंसनीय रहा है। ऋग्वेद में 'वीर' शब्द की जो व्याख्या की गई है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अस्त्र-शस्त्र-संचालन में कुशल, युद्धकला में निष्णात, शौर्य श्री सम्पन्न, यज्ञ, दान, दयादि कर्मों में दक्ष व्यक्ति वीर होता है। उत्साह वीरों का मनोगत मूल भाव है, जो वीरतापूर्ण विचारों की प्रेरक शक्ति और वीर रसात्मक क्रियाकलापों का मूल उत्स है। युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर का सम्बन्ध इसी वीर भाव से है। वीरकाव्यों में सामान्यतः युद्धवीरों का ही प्रधान्य है। युद्धवीर का उत्साह क्रोधवेश में रौद्र रस का रूप धारण कर लेता है और रौद्र रस की प्रतिक्रिया भयंकर मारकाट के माध्यम से अंततोगत्वा वीभत्स रस में प्रकट होती है। इस दृष्टि से वीररस एक विकसनशील रस है। वह प्रायः रौद्र रसोन्मुखी होता है, जबकि दान, दया और धर्मवीर का रसात्मक विकास शान्तरसोन्मुख होता है।

वीरकाव्य-धारा वैदिक काल से सतत प्रवाहमान है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में अनेकानेक राजाओं की युद्धवीरता और दानवीरता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है। पुराणों में अनेक सूर्यवंशी राजाओं की वीरता के अनेक आख्यान भरे पड़े हैं। रामायण में राम-रावण युद्ध की वीर रसात्मक अभिव्यक्ति हुई है और महाभारत तो युद्ध, दान, दया व धर्मवीर के विवरणों का आधार है। भूषण के काव्य में अनेक पौराणिक पात्रों के संदर्भ और उनसे शिवाजी की तुलना देखी जा सकती है।

संस्कृत के अश्वघोष, भारवि, माघ, श्री हर्ष आदि का साहित्य वीररस की गौरवमयी परम्परा को आगे बढ़ाता है। अपभ्रंश में पुष्पदंत का जसहरजरिउ, श्रीधर का सुकुमारचरिउ आदि अनेक वीर चरित काव्य है। इन जैनरासों में चरितनायकों के माध्यम से जैनधर्म के तत्त्वों का प्रचार किया है।

हिन्दी के वीरगाथा काल में लौकिक वीर भावनाओं की उताल तरंगें दृष्टिगोचर होती हैं। शाङ्गधर का हम्मीररासो, दलपति विजय का खुमानरासो, चंदबरदायी का पृथ्वीराज रासो, भट्ट केदारकृत जयचन्द प्रकाश, जगनिक का आल्हखण्ड, श्रीधर का रणमल्ल छंद आदि कई नरप्रशस्तिकाव्य लिखे गए। इनमें नायकों की युद्ध वीरता का भव्य चित्रण किया गया है। चरितनायक की युद्धवीरता के साथ-साथ उनकी दान, दया और धर्मवीरता भी वर्णित कर कवियों ने उन्हें महान् वीर योद्ध के रूप में चित्रित किया है। भक्तिकाल में राम और कृष्ण की वीरता का बखान पौराणिक संदर्भों में हुआ। मानवीय रसानुभूति जब देवी देवीताओं के माध्यम से प्रकट की जाती है तब उसमें काव्यशास्त्रीय रस खोजने की बजाय भक्ति रस का संधान प्रधान हो जाता है, अतः राम और कृष्ण की वीरता का बखान भक्तिरसान्तर्गत माना जाता है। फिर

भी रामचरित में भक्ति भाव की प्रधानता होते हुए भी राष्ट्रीय आधार पर राम के योद्धा एवं विजयी रूप को स्वीकारा गया है। श्रीकृष्ण द्वारा दृष्टि निर्दिष्ट एवं विजयलाभ का ज्ञापन युद्ध वीरता की ही स्वीकृति है।

रीतिकाल तक आते आते भारत में मुगल साम्राज्य की जड़ें बहुत गहरी हो गयी थी। हिन्दू शासकों में स्वदेश, स्वजाति और स्वराष्ट्राभिमान सो-सा गया था। मुगल दरबार की शान शौकत, वैभव-विलास और उपभोग की भावना भारतीय शासकों के मन में गहराई से जड़ें जमा रही थी। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता से सारा देश संतप्त था। इस युग के दैनिक जीवन में जहाँ विलासिता का साम्राज्य था, वहाँ धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों की प्रेरणास्वरूप अनेक युद्धों के अवसर भी उपस्थित होते रहते थे। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में—“कहीं-कहीं तो ये युद्ध अत्याचार के विरोध में और अनौचित्य का मुहताब उत्तर देने के लिए होते थे, कहीं धर्मरक्षा इनका ध्येय था। इसके अतिरिक्त अधिकांशतः दम्भ के कारण अपनी आन की रक्षा के लिए कभी-कभी आपस में गृहयुद्ध भी छिड़ जाते थे। इनमें अधिकतर युद्ध रीतियुग के वीरकाव्य में वर्ण्य-विषय होकर आये। युद्धों के अतिरिक्त वीर और उदार व्यक्तियों के चरितगान में भी वीररस का सुन्दर निरूपण हुआ है। ऐतिहासिकता पर आधृत होने के कारण रीतिकालीन वीरकाव्य जनता को प्रेरणा प्रदान करने में भी अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

इस काल में रचित वीरकाव्य के निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं—

1. शुद्ध वीरकाव्य
2. रासो-पद्धति का शृंगारमिश्रित वीरकाव्य
3. वीर देव-काव्य या भक्ति भावित वीरकाव्य
4. अनूदित वीरकाव्य (महाभारत आदि)
5. दरबारी कवियों का प्रकीर्ण वीरकाव्य
6. पंजाब में रचित 'वर' काव्य
7. चरित काव्य
8. विजय काव्य (जंगनामा, फतहनामा आदि)

शुद्ध वीरकाव्य की रचना का सूत्रपात इसी युग से हुआ। इस पद्धति के रचयिता भूषण, श्रीधर, लाल, सूदन, पद्माकर, गणेश कवि और आचार्य अमीरदास हैं। भूषण ने छत्रपति शिवाजी को अपने वीरकाव्य का नायक बनाया है। श्रीधर का 'जंगनामा' फर्रुखसियर-जहाँदार शाह के युद्ध पर आधारित है। लाल कवि ने 'छत्रप्रकाश' शीर्षक से महाराज छत्रसाल का जीवन-चरित्र दोहों-चौपाइयों में विस्तार से लिखा है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें ऐतिहासिकता को पूर्णतः सुरक्षित रखा गया है। जहाँ छत्रसाल की वीरता का ओजस्वी वर्णन है, वहाँ यथास्थान सुकुमार घटनाओं के मर्म को प्रस्तुत करने में भी कवि पूरी तरह जागरूक है। सूदन कवि ने राजा सुजानसिंह की वीरता का विशद वर्णन 'सुजानचरित' नामक प्रबन्धात्मक वीरकाव्य में किया है। सूदन की शब्दावली युद्ध का वातावरण उत्पन्न करने में सफल सिद्ध हुई है। किन्तु नादात्मक ओजमय स्वरूप प्रस्तुत करने में कवि ने शब्दों में इतनी अधिक तोड़-मरोड़ की है कि भाषा के प्रति कुछ अन्याय-सा प्रतीत होने लगता है। फिर भी, युद्ध के वातावरण के प्रभावशाली चित्रण में ये वीर रस के कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। सूरजमल का धाक का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

सूदन सकल सिंह सूरज तिहारे धाक,
घूमनु करत रहे दक्खिन बिझूक्यौ सो।

सहित अमीर पीर धीर न धरंत उर,
चौक चौक चाहत चकत्ता चितचूक्यौ सौ।

सूदन को युद्ध की भीषण प्रचण्डता की प्रत्यक्ष अनुभूति है इसीलिए युद्धभूमि के सचित्र एवं बिम्बात्मक वर्णन सूदन की लेखनी से शक्तिशाली वाणी पा सके हैं। इनके अतिरिक्त पद्माकर ने बांदानरेश हिम्मत बहादुर, गणेश कवि ने पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंह तथा आचार्य अमीरदास तथा आचार्य अमीरदास ने रणजीत सिंह को अपने वीरकाव्य का नायक बनाया है। इन्होंने समकालीन राजनीतिक क्षेत्र में अन्याय और अत्याचारों का सशक्त विरोध करने वाले जातीय वीरों का उदात्त भावनाभावित यशोगान किया है।

रासो-पद्धति के शृंगारमिश्रित वीरगाथा प्रणेताओं में जोधराज, चन्द्रशेखर, वाजपेयी तथा सूर्यमल्ल प्रमुख हैं। जोधराज की रचना 'हम्मीर रासो' में नाम, विषय और शैली सभी दृष्टियों से वीरगाथाकाल की अनुकृति स्पष्ट है। यह वास्तव में एक ओजस्वी प्रबन्धकाव्य है। ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए कवि ने कुछ स्थलों पर नवीन कल्पनाएँ भी की हैं जिससे प्रबन्धात्मक वीरकाव्य की सृष्टि मनोरम बन सके। चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा पटियाला नरेश नरेन्द्रसिंह की प्रेरणा से रचित 'हम्मीर हठ' जगनिक के आल्हखण्ड और भूषण के शिवराज-भूषण के पश्चात् सर्वाधिक प्रशंसित वीरकाव्य है। सूर्यमल्ल कृत 'वंश भास्कर' में बूंदी के राजवंश का आख्यान है।

वीर देव-काव्य अथवा भक्ति-भाव्य कर्त्ताओं में गुरु गोविन्द सिंह का नाम अग्रणी है। इनके अतिरिक्त भगवन्तराय खीची, मनिधर सिंह, बहादुर सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। साथ ही खुमान जिन्होंने 'मान' उपमान से काव्य-रचना की, इसी श्रेणी में आते हैं। इन्होंने 1822 ई. के आस-पास 'नृसिंहचरित' की रचना की थी।

अनूदित वीरकाव्य की सर्वाधिक रचना का श्रेय गुरु गोविन्द सिंह तथा पटियाला दरबार की हैं। गुरु गोविन्द सिंह जी के इतिहासविदित 52 कवियों के काव्य का पर्याप्त अंश अनूदित वीरकाव्य ही है। उन्होंने 'महाभारत' का पद्यानुवाद आरम्भ करवाया था जिसे पटियाला-नरेश महाराज कर्मसिंह तथा नरेन्द्रसिंह ने अपने दरबारी कवियों-दलसिंह, निहाल, कीरतसिंह आदि द्वारा पूर्ण करवाया। अन्य वीरकाव्य अनुवादकों में सबलसिंह चौहान, कुलपति, छत्रसिंह कायस्थ एवं काशीराज के दरबारी कवि गोकुलनाथ और मणिदेव उल्लेखनीय हैं।

प्रकीर्ण वीरकाव्य दरबारी कवियों में केशव, मतिराम, मोहनलाल भट्ट और पद्माकर के अतिरिक्त घनश्याम शुक्ल, हरिकेस, शम्भूनाथ, मान कवि, थान कवि, पण्डित प्रवीन और लछिराम आदि का काव्य महत्त्वपूर्ण है।

पंजाब में 'वार' नाम से अनेक वीरकाव्य रचे गए जिनमें से कवि केशवदास कृत 'वार राजा अमरसिंह की' विशेष प्रसिद्ध हैं।

चरितकाव्य के अन्तर्गत जंगनाया गुरु गोविन्द सिंह का (अणीराय), विजय-विनोद (ग्वाल) फलहनामा गुरु खालसा जी का (गणेश कवि) आदि प्रमुख हैं।

वीरकाव्य-परम्परा में भूषण का स्थान- रीतिकाल में शासन की धर्मान्धता एवं कट्टरता से पीड़ित राष्ट्र को एक आदर्श लोकनायक और लोक-संगठन के भाव की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। ऐसी अवस्था में भूषण आविर्भूत हुए। उन्होंने तद्युगीन आद्य कवि केशवदास की रतनबावनी, वीरसिंहदेवचरित आदि का

अनुकरण करने वाले कवियों की पद्धति को छोड़, युग-जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि दरबारों में राजस्थानी कहावत—‘नाँव तो भीतड़ा या गतड़ा सूँ रेवे’ के अनुसार कई शासक भीतड़ (विशाल राजमहल, मन्दिर आदि) बनवाकर अपना नाम अमर करने का प्रयत्न कर रहे हैं और राजा, जागीरदार, जमींदार कवियों को आश्रय दे ‘गीतड़ा’ के माध्यम से अमरता पाने की चेष्टा कर रहे हैं। ये दरबारी कवि जिन शासकों के नाम पर प्रशस्ति-रचना कर रहे हैं, उनमें आदर्श लोकनायक के गुणों का सर्वथा अभाव है। अतः उनकी वाणी चाटुकारिता की विज्ञप्ति से अधिक मूल्य नहीं रखती। ऐसा काव्य पुरस्कृत हो सकता है लेकिन उससे देश, जाति और समाज को जीवन शक्ति नहीं मिल सकती। ऐसे में भूषण ने अपने युग के लोकनायक छत्रपति महाराज शिवजी को अपना प्रधान और उनके प्रेरक व्यक्तित्व से उत्तेजित दूसरे लोकनायक छत्रसाल बुन्देला की चरितनायक बना वाणी के मंदिर में घोषणा की कि—

ब्रह्म के आनन ते निकसें ते अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।

...पुन्य चरित्र सिवा सरजे बरम्हाय पवित्र नई बर बानी॥

कवि भूषण ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के आदिकाल तथा भक्तिकाल से होकर अपने युग तक आले वाली वीर-काव्य परम्परा को अपने ओजस्वी छंदों में चरमोत्कर्ष प्रदान किया है और अपनी सशक्त वाणी के बल पर काव्य को शृंगार की स्त्रणता के कक्ष से बाहर निकाल स्वजाति, स्वदेश के अभिमान के लिए वीरता के क्षेत्र में लाकर खड़ा कर दिया। इस राष्ट्रीय ध्येयवाद के कारण ही भूषण की रीतिकालीन शृंगारप्रधान प्रवृत्तियों के बीच अपना विशेष महत्त्व रखता है।

‘शिवराजभूषण’ नामक अलंकार-ग्रंथ की रचना कर महाकवि भूषण ने रीतिग्रंथकारों में अपना विशेष स्थान बनाया है, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास और भूषण हजारा नामक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। शिवाबावनी और छत्रसाल दशक भूषण कृत छंदों के संकलन हैं जिनका नामकरण सन् 1890 में गोबर्धनदास भाटिया ने किया। इन दोनों संकलनों में रीतिरहित वीरसात्मक काव्य का सच्चा उत्कर्ष मिलता है। शिवाबावनी राष्ट्रीय भावदोद्भाविनी राजस्तुति के गौरव से मंडित है। यह ठीक है कि भूषण का क्षोभ बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ आदि के प्रति न होकर औरंगजेब और उनके सूबेदारों के अत्याचारों के प्रति है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अन्याय के प्रति है। शिवाजी हिन्दू जाति के संरक्षक थे, परन्तु अत्याचारी मुसलमान के प्रति कठोर थे। धार्मिक सदाचारी मुसलमानों के प्रति उनका विरोध न था। प्रजागत जाति-भेदभाव भी न था, इसीलिए भूषण ने देश के अत्याचारी शासन से टक्कर लेने वाले वीरों के चरित्रों का गान किया है। शिवाजी और छत्रसाल जैसे लोकनायकों को स्वतंत्रता के लिए सतत प्रेरित करने के कारण भूषण अपने युग के प्रधान राष्ट्रीय कवि थे। शिवाजी के पराक्रम और उनकी सेना का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

भूषण भनत तेरी हिम्मत कहां लौ कहो,

किम्मति यहां लागि है जाकी भटजोट मैं।

ताव दै दै मूछन कंगूरन पै पाँव दै दै।

अरि-मुख घाव दै दै कूदि परै कोट मैं।

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक हैं। उन्होंने राष्ट्रियता की परिभाषा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से की है। उनकी वाणी प्रपीडित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वासन है। चाहे भूषण की कविता में उत्कृष्ट मर्मज्ञ कवि की सूक्ष्म कवित्व कला न हो, किन्तु उनके काव्य में ओज का प्रभावी घोष अवश्य है, जो रग-रग में रक्त

का संचार करने में समर्थ है। वीररसानुकूल भाषा लिखने में भूषण सिद्धहस्त है। छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा में कवि का भाषा प्रवाह और अलंकार चमत्कार दर्शनीय है—

पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।

भूषण के काव्य में औरंगजेब और उनके धार्मिक अत्याचारों के विरुद्ध आक्रोश का स्वर सुन कर कुछ लोग उन पर हिन्दुओं के जातीय कवि की मुहर लगाने की चेष्टा करते हैं और उन्हें मुगलों का कट्टर शत्रु घोषित कर उनके काव्य में साम्प्रदायिकता की गन्ध सूँघने लगते हैं। यह भूषण के प्रति सरासर अन्याय है। उनके काव्य में हिन्दू, जनेऊ, माला व चोटी के वर्णन हैं। मंदिरों की महिमा भी है, पर पवित्र कुरान या इस्लाम के विरोध में एक शब्द भी नहीं मिलता। भूषण और उसके आश्रयदाता शिवाजी दोनों ही इस्लाम धर्म और कुरान के प्रति आदर रखते थे, इसीलिए शिवाजी के कट्टर विरोधी रफी ख़ाँ ने भी शिवाजी की धार्मिक उदारता की प्रशंसा की है।

वास्तव में भूषण तत्कालीन भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पुनर्जागरण के उद्घोषक कवि थे। शिवाजी में उन्हें सैकड़ों वर्षों से खोई भारतीय स्वतंत्रता की भावना की ज्योति दिखाई दी और इसीलिए उन्होंने अपनी वाणी को शिवचरित्र-गान से पुनीत किया। भूषण का महत्त्व उनके काव्य के चरित नायकों से है जो अपने युग के ही नहीं, युग-युग के लिए भारत के आदर्श लोकनायक हैं। विदेशियों के अत्याचारों से इस देश की भूमि और यहाँ के निवासियों की मुक्ति की चिंता एक जातीय प्रयास नहीं, राष्ट्रीय कार्य है, और भूषण तथा शिवाजी दोनों ने अपने-अपने ढंग से भारतीय स्वातन्त्र्य भावना के विकास में अपना योगदान दिया है। शिवाजी का प्रेरक व्यक्तित्व तो भारत के इतिहास की श्रेष्ठतम उपलब्धि और वर्तमान के लिए महान धरोहर है—

साजि चतुरंग वीर रंग मैं तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीवन चलत है।
भूषण भनत नांद विहद नगारन के,
नदी नद मद गब्बरन के रलत है।
ऐल फैल खेल-भेल खलक मैं गैल-गैल,
गजन की टेल-पेल सेल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत, जिमि,
धारा पर पारा पारवारा यों हलत है।

कवि भूषण के काल का रसास्वादन करने वाले 'सहृदय' पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि अमृतध्वनि छन्दप्रिय भूषण ने ओजगुण एवं परुषावृत्ति-प्रधान काव्य में अपना आत्मबल समाहित किया। वह भारतीय संस्कृति के गौरव का उन्नायक कवि बना है। जातीय, राष्ट्रीय सम्मान को सजीव रखने के लिए भूषण ने सरस्वती की अर्चना की थी। उस अर्चना से प्राप्त आत्मज्ञान एवं साहित्यिक बोध से वह भारतीय संस्कृति का प्रतीक कवि सिद्ध हुआ है। वस्तुतः हिन्दी काव्य-परम्परा में कवि भूषण युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व के रूप में मान्य है और रहेगा।

(ख) भूषण का अभिव्यंजना-शिल्प

भावानुभूतियों की सौन्दर्यमयी अभिव्यंजना ही कला है। रीतिकालीन काव्य प्रमुखतः इसी अभिव्यंजनाकौशल का काव्य है। वह युग भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की समृद्धि का युग था। एक विद्वान समीक्षक के अनुसार उस काल की कविता के कहने की शैली, उसकी वक्रता, वाग्विदग्धता, शब्दचयन और मंडनशिल्प का था। क्या कहा जाता है—इसका महत्त्व नहीं था, किस प्रकार कहा जाता है—इसी का सारा चमत्कार था। फिर रीति-ग्रंथों का विषय ही काव्यकला है, इसलिए उनमें उत्कृष्ट कलात्मक सौन्दर्य का समावेश सर्वथा स्वाभाविक है। रीतिकालीन कवियों की शब्द-साधना रीतिकाल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य में भूषण के व्यक्तित्व और कृतित्व का जो महत्त्व है, उसका मूलाधार भूषण की काव्यकला और उनके काव्य के चरित-नायकों का आदर्श व्यक्तित्व है। भूषण प्रधानतः वीररसात्मक नर-प्रशस्ति-काव्य के ओजस्वी कवि थे, अतः अपने काव्य में उन्होंने यथाशक्ति उससे सम्बन्धित सभी विषयों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। शिवराज भूषण के युद्ध वर्णन, आतंक-वर्णन, शौर्य-वर्णन, दान-धर्म वर्णन या अन्यान्य विविध विषयों के वर्णन भी वीर काव्य की परम्परा के रूढ़ वर्ण-विषयों से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। भूषण के काव्य का केन्द्र बिन्दु शिवचरित्र ही है जिसे अंकित करते समय कवि ने शिवाजी के व्यक्तित्व गुणों, उनकी युद्ध नीति, शत्रुओं की लूट, जहाजी बेड़े की शक्ति आदि का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। उन्होंने शिवाजी को युद्धवीर और धर्मवीर ही नहीं, दान और दयावीर भी चित्रित कर उन्हें शरणागत वत्सल और गुण-ग्राहक आदर्श नृपति भी कहा है। इसके साथ-साथ भूषण के काव्य में प्रकृति का सौम्य चित्रण एवं शृंगार का मनोरम वर्णन भी मिलता है। इनके काव्य में शृंगारचित्रण युगीन प्रभाव को लिए हुए हैं। इसके अतिरिक्त भूषण ने कतिपय उपदेशात्मक छन्दों का भी निर्माण किया है। जिनमें संसार की असारता और निर्वेद का भाव प्रधान है। उनके नीतिविषयक छन्दों में भी इसी प्रकार की उपदेशात्मक पाई जाती है। इन सभी काव्य विषयों को कवि ने तदनुकूल भाषा-शैली में अभिव्यक्त किया है।

1. भाषा— भाषाधिकार भूषण की सबसे बड़ी विशेषता थी। वे भाषा को भावाभिव्यक्ति और प्रभावान्विति का साधन मानते थे, अतः भाषा के मामले में वे परिनिष्ठित, सुसंस्कृत या विशुद्ध भाषा की अपेक्षा भाषानुरूप ओजवत्ता और अर्थवत्ता-सम्पन्न सभी भाषाओं के शब्दों का समान रूप से समादर करते थे। इसमें उन्होंने किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा। उदाहरणार्थ—

“ता दिन अखिल खलभल खल खलक में
जा दिन सिवाजी गाजी नेक कररक्त है।”

इस पंक्ति में ‘अखिल’ और ‘खल’ संस्कृत के, ‘खलक’ अरबी का और ‘खलभले’ देशज शब्द हैं।

शब्दावली— रीतिकालीन कवियों की भाँति भूषण ने व्यवहार की बातों के वर्णन-प्रसंगों में व्यावहारिक शब्द तथा शास्त्रादि-सम्बन्धी बातों के प्रसंगों में परिभाषिक शब्द ग्रहण किए। इनके प्रयोग के मूल में केवल एक ही बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया कि ये यथासंभव बिम्ब को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में समर्थ हों तथा ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल रहें। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ अपने आप में भाषा की दृष्टि से इतनी समर्थ बन पड़ी हैं कि इनमें प्रस्तुत तत्सम शब्द उसका अपना प्रतीत होता

है। ब्रजभाषा को संस्कृत का तत्सम शब्द-समूह यद्यपि विरासत रूप में युगों से प्राप्त रहा तथापि इसके प्रयोग में ब्रजभाषा कवियों के संस्कारों और उनकी शिक्षा का सर्वाधिक योग कहा जा सकता है। प्रस्तुत छन्द में भूषण ने भावों को ओज प्रदान करने के लिए तत्सम शब्दावली की प्रयोग किया है-

अगर के धून धूम उठत जहाँई जहाँ
 उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।
 जहाँई कलावत अलापैं मधुर सवर
 तहाँई भूत-प्रेत अब करत विलाप हैं।
 ...बाजत है जिन महलन मृदंग तहाँ
 गाजत मतंग सिंह बाघ दीह दाप हैं।

यहाँ अमाप, कलावत, मधुर स्वर, भूत-प्रेत, मृदंग, मतंग, सिंह आदि तत्सम शब्द वस्तु-स्थिति के वर्णन में सहायक सिद्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त भूषण के काव्य में तद्भव शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। इनमें कुछ ऐसे हैं जो अपभ्रंश और प्राकृत भाषाओं से होते हुए भी ब्रजभाषा में पुनः विकारयुक्त हो गए हैं और कुछ संस्कृत से ही सीधे आकर इस रूप को प्राप्त हुए हैं। इन सबकी विशेषता यह रही है कि भाषा के अनुकूल होकर ये सर्वत्र उनमें ऐसे खप गए हैं कि प्रत्येक विषय-सम्बन्धी रचनाओं में विभिन्न प्रकार के बिम्बों की व्यञ्जक शब्दावली से पृथक् प्रतीत नहीं होते- तत्सम, अर्द्धतत्सम तथा अन्य प्रकार के शब्दों जैसे ही सरल, स्वाभाविक एवं अर्थवैशिष्ट्य-पूर्ण हैं। यथा-

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
 नाही ठहराने राव राने देस के।
 नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि
 बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के।

यहाँ बाने फहराने, ठहराने, राव, पराने, बाजत शब्द क्रमशः बाण, प्रसारण, स्थैर्य, राजा, पलायन और वादन के विकार हैं।

भूषण के काव्य में अन्य जिन भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं, वे इस प्रकार हैं-

- (1) **अरबी**- अदब, इलाज, करामात, तमाम, अमीर, मुहीम, सलाम, हरम, सूबा आदि।
- (2) **फारसी**- आसमान, आब, दरगाह, पनाह, प्यादे, बदनाम, बहार आदि।
- (3) **मराठी**- पेज, माची, मौज, बेदर, जासनी आदि।
- (4) **बुन्देली**- धरबी, कीबी आदि।
- (5) **बैसवाड़ी**- कालि, कलीदे।
- (6) **अपभ्रंश**- पव्वय, पुहुमि, कित्ति, भुअपाल आदि। हिन्दी के वीर काव्य में अपभ्रंश की यह शब्दावली अपना विशिष्ट उच्चारण सौष्ठव और अर्थ-गौरव रखती है।
- (7) **खड़ी बोली**- भूषण के कतिपय छन्दों में खड़ीबोली के क्रियारूपों को भी देखा जा सकता है। यथा-

“पंच हजारिन बीच खरा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।
 भूषण यों कहि औरंगजेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया।

कम्मर की न कहारी दई इस काम ने गोसलखाना बचाया।

जोर सिवा करता अनरथ्य भली भई हथ्य न आया।”

- (8) **शब्दों की तोड़-मोड़ और देशी शब्दावली-** ब्रजभाषा अपने आरम्भ काल से ही इतनी लोचपूर्ण रही है कि किसी भी विषय और किसी भी युग की भावनाओं को इसके माध्यम से स्वच्छता के साथ व्यक्त ही नहीं किया जा सका, बल्कि इससे भिन्न प्रकृति वाली भाषाओं के शब्दों को भी उसने अपने सरलता के साथ इस प्रकार से आत्मसात कर लिया है कि वे बाहर से लाए प्रतीत ही नहीं होते। किन्तु इस लोच का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि कवियों ने कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक छूट प्राप्त कर शब्दों को इतना तोड़ा-मरोड़ा है कि उनके सही रूप और अर्थ तक पहुँचना भी अपने आप में दुरूह हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा इन लोगों ने छन्द और लय के आग्रह तथा ओज की सृष्टि के लिए किया है परन्तु फिर भी यह भाषा का दोष कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा। उदाहरण के लिए यह छन्द देखा जा सकता है—

“भंगगरब तिलंगगयउ कालिंगगलि अति।

दुंददबि दुहु दंददलनि विलंददहसति।

लच्छच्छिन करि म्ताच्छच्छप छिति।

हल्लल्लंगि नरपल्लल्लरि परनल्लल्लिय जिति।”

- (9) **उकारान्त कोमल शब्दावली-** वाणी की कोमलता के लिए अनेक शब्दों में भूषण ने उ की मात्रा अन्त में जोड़कर समस्त शब्द को श्रुतिमधुरिमा प्रदान की है। जैसे— गनाइयतु, गाइयतु, ध्याइयतु, आइयतु, भरतु, धरतु, तितरंतु आदि।

भाषागत वैशिष्ट्य- भूषण की काव्यभाषा पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा रीतिकाल में व्यवहृत, परिष्कृत, परिनिष्ठित, सशक्त, प्रभावशालिनी, अर्थवत्ता से सम्पन्न ब्रजभाषा थी। वीरकाव्य-परम्परा के अनुसार वीरगाथाकालीन शब्दावली, कठोर, व्यंजन या द्वित्व वर्ण आदि प्रयोग से भूषण ने अपनी भाषा को वीररसानुकूल बनाने का प्रयत्न किया है, उसमें ओज खूब उभरा है।

अलंकार- भाषा-सौष्ठव में अलंकारों का विशेष महत्त्व है। ये वाणी को श्रुतिग्राह्य बनाने वाले संगीत के विधायक विभिन्न तत्त्वों का सन्निवेश करने के साथ-ही-साथ अभिव्यक्ति के भीतर सामान्यतः उन सभी विशिष्ट बातों को भी प्रस्तुत कर देते हैं जो बिम्ब के अनुरूप कही जा सकती हैं—विषयानुकूल संगीत के उपयुक्त झंकार की सृष्टि ‘अनुप्रास’ से, चमत्कार की ‘यमक’ से तथा गति की ‘वीप्सा’ और ‘पुनरुक्ति’ से तो होती है, इसके अतिरिक्त ये बिम्ब के अनुरूप भाषा को उचित तथा छन्द को तदुपयुक्त बनाने में विशेष सहायक सिद्ध होते हैं। भूषण का भाषा पर इतना अधिकार था कि अपनी काव्यभाषा-ब्रजभाषा से इतर भाषाओं और बोलियों के शब्दों को उसकी प्रकृति के अनुरूप सहज ही ढाल सकते थे तथा प्रत्येक शब्द का प्रयोग भी सावधानी से करते थे। विषयानुकूल सौन्दर्य की सृष्टि करने में वे अत्यन्त सफल रहे हैं। बानगी के लिए एतद्विषयक यह उद्धरण देखा जा सकता है—

“काल करत कलि काल में, नहिं तुरुकन को काल।

काल करत तुरकाल को, सिव सरजा करवाला।”

इसमें लाटानुप्रास का चमत्कार स्वतः स्पष्ट है। 'यमक' के प्रयोग में वे इतने सिद्धहस्त रहे हैं कि समग्र हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत इनके काव्य को सरलता से देखा ही नहीं जा सकता। सभी प्रकार के वर्ण-समूह को इन्होंने अत्यन्त कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। जैसे—

ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहनवारी
 ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं।
 कंदमूल भोग करें ते कंदमूल भोग करें
 तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती हैं।
 भूषण सिथिल अंग भूषण शिथिल अंग
 बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं।
 भूषण भनत सिवराज वीर तेरे त्रास
 नगन जड़ाती ते वे नगन जड़ाती हैं।

इसमें घोर, मंदर, कंदमूल, बेर, भूषण, बिजन डुलाती, नगन और जड़ाती—इन सार्थक शब्दों (अक्षर समूहों) की आवृत्ति हुई है और सभी भिन्नार्थक हैं।

गुण-प्रयोग—काव्य के तीन गुण माने गये हैं— माधुर्य, ओज और प्रसाद। भूषण ने मुख्यतः ओज और प्रसाद को अपनाया है 'ओज' का समावेश इन्होंने साधारणतः सैन्य प्रयाण और युद्ध के वर्णनों के अतिरिक्त गुण, वैभव जैसे कतिपय इतर प्रसंगों में भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है जबकि 'प्रसाद' का प्रायः दान, गुण तथा वैभव सम्बन्धी बिम्बों की अभिव्यक्ति में। 'ओज' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'कीबे को समान प्रभू ढूँढ़ि देख्यो आन पै,
 निदान दाल जुद्ध मैं न कोऊ ठहरात हैं।
 पंचम प्रचंड भुजदंड को बखान सुन
 भागिबै की पच्छी लों पठान थहरात हैं।

यहाँ संयुक्ताक्षरों की अपेक्षा कठोर ध्वनियों का प्रयोग अधिक हुआ है और उनकी योजना कुछ इस प्रकार है कि उनके बीच आई अनुस्वार-युक्त ध्वनियाँ भी 'ओज' की व्यंजना कर रही हैं। इसके मूल में रचनागत 'ओज' और अभिव्यक्ति में वाणी की स्फूर्ति की होना ही है— मात्र अक्षरों की योजना नहीं।

शब्द शक्ति—भाषा सौष्टव के अन्तर्गत शब्द-शक्तियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः अभिव्यक्ति के सहज माध्यम के रूप में भाषा की सफलता तभी संभव है जबकि इसका प्रत्येक पद बिम्ब और उसकी अनुभूति के विविध अवयवों की सही प्रतीति कराये। चूँकि कोई भी पद एक ही बिम्ब के विभिन्न पक्षों या अनुभूति की विभिन्न छायाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, यही कारण है कि कवि को प्रायः इसके अर्थ का संकोच या विस्तार कुछ इस प्रकार से करना पड़ता है कि उसके मनस्पटल पर विद्यमान बिम्ब का वैशिष्ट्य यथासंभव सही और प्रभावशाली ढंग से इसके द्वारा व्यंजित हो सके। अर्थ के अन्तर्गत इस प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता का न्याय तथा नियमन शब्द-शक्ति करती है। संस्कृत-काव्य-शास्त्र में शब्द की तीन शक्तियाँ बताई गई हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। अभिधा का एक उदाहरण दर्शनीय है—

काहू के कहे सुने ते जाही ओर चाहें ताही
 ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं।

कहे तें कहत बात कहे ते पियत खान
भूषण भनत ऊँची सांसन जहत हैं।

इसमें अरि-नारियों के साथ दारिद्र्य के जंगल में जा बसने, शत्रुओं को टकटकी लगाकर देखते रहने, किसी की बात न सुनने, खानपान त्यागने, दीर्घ निःश्वास छोड़ने और चेतनाशून्य होने आदि का बिम्ब व्यक्त किया गया है जिनके लिए केवल वाचक शब्दों का आश्रय लिया गया है। इन शब्दों के अर्थ से ग्रहीत उक्त स्थूल बिम्ब ही आकर्षक एवं प्रभावी है।

लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग भी भूषण ने यथास्थल किया है। इन प्रयोगों में बिम्ब और उनकी प्रतीति को स्पष्टता ही प्राप्त नहीं हुई, प्रत्युत उनमें मार्मिक सौन्दर्य अर्थात् 'ध्वनि' भी विद्यमान है। इस संदर्भ में यह छन्द दर्शनीय है।

जोर करि जैहैं जुमिलाहु के नरेस पर
तोरि अरि खण्ड खझउ सुभट सुराज पै।
भूषण असाम रूप बलख बुखारे जैहैं
चीन सिलहह तरि जलधि जहाज पै।
सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ
कहै नवरंगजेब साहि सिरताज पै
भीख मांगि खैहै बिन मनसब रैहैं
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै।

इस उद्धरण में आश्रयदाताओं के आतंक और प्रतापाधिक्य की व्यंजना क्रमशः 'वक्तावैषिष्ट्य' द्वारा कराई गई है अतएव इसमें 'आर्थी व्यंजना' स्पष्ट है।

मुहावरे और कहावतें—मुहावरे और कहावतें वाणी का प्रभाव द्योतित करने वाली शब्दशक्ति की सिद्धि के चमत्कार हैं, जिनमें लोकमानस अपने जीवनव्यापी अनुभव के आधार पर वाणी की अर्थवत्ता और प्रभावशीलता भरता रहा है। भूषण ने लोकानुभाव के आधार पर ऐसे कई मुहावरों और कहावतों से अपना काव्य समृद्ध किया है जैसे—

- (1) “ग्रीष्म के भानु सो खुमान को प्रताप देखि
तारे सम तारे गए मुदि तुरकन के।”
- (2) “मारे सुनि सुभट पनारे वारे उदभट
तारे लगे फिरन सितारे गढ़धर के।”

ये मुहावरे क्रमशः तुर्कों की किंकर्तव्यविमूढ़ता और सितारगढ़ के स्वामी की घबराइट का बोध कराने में सफल हैं।

उक्तिवैचित्र्य—'उक्तिवैचित्र्य' उत्तमकाव्य का सहज अंग है। इससे भाषा में वह शक्ति समाहित हो जाती है जो व्यंग्य को तीखा बनाने में सहायता प्रदान करती है। यहाँ 'वैचित्र्य' शब्द से अभिप्राय कवि-कर्म-कौशल-जन्य शब्दार्थ-चारुता से है जिसके लिए आचार्य कुन्तक ने 'वक्रता' शब्द का प्रयोग किया है। भूषण ब्रजभाषा के व्याकरण से भलीभाँति परिचित थे, अतः उनकी भाषा में इन विशेषताओं का प्रयोग जहाँ एक ओर वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्ध होकर आया है वहाँ दूसरी ओर साहित्यिक दृष्टि से सौन्दर्यवर्द्धक भी है। जैसे—

अति मदवारे जहाँ दुरदै निहारियतु
 तुरगन ही में चंचलाई परकी है।
 भूषण भनत जहाँ पर लगै बानन में
 कोक पच्छिनहिं माहि बिछुरन रीति है।
 मुनि न चोर जहाँ एक चित्त ही के
 लोक बंधे जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है।
 कंप कदली मैं बारि बुंद बदली मैं
 सिवराज अंदली के राज मैं यों राजनीति है।

इसमें मदवारे, चंचलाई, चोर, बंधे, गुन, कंप, वारिबुन्द शब्दों का प्रयोग क्रमशः मदिरापन के कारण मस्त, चपलता, शत्रु, पृथक होने, वस्तुओं को छिपाकर उड़ा ले जाने वाले बंधने (बन्दी होने के कारण), रस्सी, कंपन (भयात्) अश्रु के प्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त न होकर क्रमशः (गजों की) मदयुक्तता, अश्वों की स्फूर्ति पंख चक्रवाक से बिछुरने, हृदय को चुराने अर्थात् प्रेम मग्न करने (गुणों से) प्रभावित होने, गुणों (विशेषताओं) हिलते रहने, (बादलों की) वर्षा के विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त कर अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि की गई है।

छन्द—वर्ण अथवा मात्रा-परिणाम पर आधृत होने के कारण छन्द का विषय अपने आप में यद्यपि स्थूल कहा जा सकता है तथापि वाङ्मय-गत इसके महत्त्व तथा इसकी उपयोगिता को कम करके नहीं देखा जा सकता। भूषण के छन्द राजदरबारों में पठनार्थ रचे गए थे, अतः इनमें छन्दशास्त्रीय दृष्टि से गुण-दोष देखने से पूर्व यह भलीभांति समझ लेना चाहिये कि दरबार में छन्दों में वर्णों का गुरुत्व या लघुत्व लिखित रूप पर नहीं, उच्चरित ढंग पर आधृत रहता है, परिणामस्वरूप कई छन्दों में लिखित गुरु-वर्ण का उच्चारण ह्रस्ववत् होता है और देखने में दो मात्राएँ होने पर भी एक ही गिनी जाती है। भूषण ने प्रमुख रूप से मनहरण, कवित्त, छप्पय, दोहा, हरिगीतिका, लीलावती, गीतिका, सवैया आदि का प्रयोग किया है। भूषण ने रूप-व्यवहार, गुण आदि की रेखाओं को अंकित करने के लिए दोहा, सोरठा, बरवै जैसे छन्दों को अपनाया है। जहाँ पर समग्र बिम्ब अपने अभिन्न अवयवों सहित प्रस्तुत करने का प्रयत्न रहा है वहाँ सवैया, कवित्त आदि बड़े आकार के छन्द यथावश्यकता ग्रहण किए गए हैं। इन दीर्घ कलेवर छन्दों-विशेषतः कवित्त और सवैया के प्रयोग में हिन्दी के समग्र साहित्य से इन्हें पृथक करने वाली एक विशेषता और रही है कि इसके अन्तिम चरण में चमत्कार अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है—

साहि तनै सरजा सिव के गुन, नेकहु भाषि सम्यो न प्रवीनो।
 उद्यत होत कुछू करिबे को, करै कछू बीर महारस भीनो।
 ह्यांते गयो चकत्ते सुख देन को, गोसलखाने गयो दुःख दीनो।
 जाय दिली दरगाह सुसाहि को, भूषण बेरि बनाय ही लीनो।

हरिगीतिका का एक उदाहरण देखिए—

कहुं केतकी कदली करौंदा कुन्द अरु करवीर हैं।
 कहुं दाख दाड़िम सेव कटहल तूत अरु जंभीर है।
 कितहुं कदंब कदंब कहुं हिंताल ताल तमाल हैं।
 पीयूष ते मीठे फल कित हूं रसाल रसाल हैं।

यहाँ छन्द की सधी हुई लय कोमल और प्रसाद-गुण सम्पन्न शब्दों की सहायता से विषयानुकूल बन गई है। छन्दों के चयन के बारे में भूषण की विशेषता यही है कि उन्होंने भावानुकूल छन्दों का चयन किया है और यथाशक्ति छन्दों के साथ कम से कम मात्रा दोष आने दिए हैं। पठनीय छन्दों की दृष्टि से उनके छन्दों में गुणों की व्यवस्था, विराम का विधान, सुरों का उतार चढ़ाव सभी प्रभावशाली हैं। इस दृष्टि से भी भूषण, कवि भूषण हैं।

काव्य-रूप—काव्य रूप काव्य की वह रूपरेखा है जिसके भीतर बिम्ब और अभिव्यक्ति परस्पर-संश्लिष्ट होकर आकार और रूप को प्राप्त होते हैं। प्रबन्ध काव्य में एक कथा जहाँ आद्यन्त प्रवाहित होती है वहाँ मुक्तक में प्रत्येक छन्द दूसरे से भिन्न भाव लिए रहता है। भूषण मुक्तक काव्य शैली के कवि थे, फिर भी प्रबन्ध काव्य शैली में जिस प्रकार एक युग और उसके चरित को समग्रता से बाँधने की शक्ति होती है, भूषण ने उसी व्यापकता को अपने फुटकर छन्दों में समाकर शिवाजी और तत्कालीन इतिहास को काव्यबद्ध किया है।

शैली—भूषण के काव्य में अनेक शैलियों के दर्शन होते हैं विवरण शैली में वर्णन प्रधान होता है। रायगढ़ वर्णन में इसका प्रयोग देखा जा सकता है। इसी तरह युद्ध वर्णन या शृंगार ने विवरण शैली का प्रयोग किया है। अपने आश्रयदाता शिवाजी के गुणों और उसके प्रतिपक्षी औरंगजेब के दुर्गुणों का विवेचन करते समय 'विवेचनात्मक शैली' का सहारा लिया है। जैसे—

कवि कहे करन करनजित कमनैत अरिन के उरन में कीनो इमि छेउ है।

कहरी एदिल मौज लहरी कुतुब कहें बहरी निजाम के जितैया कहें देउ है।

छन्दों के बीच-बीच में सुंदर संवाद शैली की भी योजना मिलती है।

सुनि सु उजीरन यो क्ह्यों सरजा सिव महाराज।

भूषण काहि चकता समुचि, नहिं सिकार मृगराज।

प्रश्नोत्तर शैली के भी अनेक सुन्दर उदाहरण भूषण के काव्य में दर्शनीय हैं। कतिपय प्रसंगों में कवि ने पात्र, परिस्थिति और तथ्य का बड़े नाटकीय ढंग से वर्णन किया है जहाँ 'नाटकीय शैली' को देखा जा सकता है।

वस्तुतः भूषण की शैली उसके व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें ओज, स्पष्टवादिता निर्भीकता, स्वाभाविकता, अलंकरण की प्रवृत्ति और प्रौढ़ मार्मिक प्रभावशालिनी भाषा का प्रयोग उल्लेखनीय है। उनका हर छन्द संक्षिप्त और पूर्ण है। उसमें उदात्ता, गांभीर्य, प्रभविष्णुता और साकार बिम्ब विधान की क्षमता पाई जाती है। भावों की सूक्ष्म व्यंजना, व्यक्तित्व की सप्राण निर्मित और वातावरण का यथा-तथ्य चित्रण उनकी शैली के विशेष गुण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि कल्पना और भाषाधिकार के कारण भाव क्रिया, प्रसंग और दृश्यांकन में भूषण की सप्राण शैली का सच्चा जादू है।

(ग) शिवा बावनी : रस-व्यंजना

डॉ. उषा कस्तूरिया,
हिन्दी विभाग, मिरांडा हाउस,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भूषण के काव्य में छत्रपति शिवाजी के कर्म-सौन्दर्य की व्याख्या तत्कालीन राष्ट्रीय संदर्भ में की गई है। छत्रपति शिवाजी का प्रमुख लक्ष्य शत्रु का दमन करना तथा देश में भारतीय संस्कृति के अनुकूल भावनाओं को पोषण प्रदान करना था। शिवा बावनी में शिवाजी द्वारा शत्रु को त्रस्त रखने का विस्तार से वर्णन हुआ है। शुक्ल जी ने लिखा है— मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और बाम दो पक्ष हैं वैसे ही उनके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्यकला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल सौन्दर्य के विकास में दिखाई पड़ती है।¹ भूषण के काव्य में कोमल और कठोर दोनों पक्ष हैं और इनमें भी कठोर पक्ष का वर्णन अधिक हुआ है। शुक्ल जी ने यह भी लिखा है यदि बीच भाव की प्रकृति मंगलविधायिनी होती है तो उसकी व्यापकता और निर्विशेषता के अनुसार सारे प्रेरित भाव तीक्ष्ण और कठोर होने पर भी सुंदर होते हैं। ऐसे बीच भाव की प्रतिष्ठा जिस पात्र में होती है उसके सब भावों के साथ पाठकों की सहानुभूति होती है, अर्थात् पाठक और श्रोता भी रस रूप में इन्हीं भावों को अनुभव करते हैं जिन भावों की वह व्यंजना करता है।² भूषण के काव्य में वीरता का आदर्श शिवाजी हैं। वे ही काव्य के नायक हैं। शास्त्रीय शब्दावली में शिवाजी 'आश्रय' हैं। आलम्बन अत्याचारी व्यक्ति (प्रमुखतः औरंगजेब) है। शिवाजी को कर्म की प्रेरणा औरंगजेब के अत्याचारों को देखकर मिलती है। इस प्रकार वह लोकरक्षक व अत्याचारी का दमन करने में तत्पर व्यक्ति के रूप में भूषण के काव्य में अवतरित हुए हैं। उनके कार्यों के मूल करुणा का भाव निहित है। अत्याचारों से पीड़ित जनता एवं देश की रक्षा में तत्पर नायक के प्रत्येक कार्य का मूल रूप मंगलकारी है। शुक्ल जी ने मंगल का विधान करने वाले जिन दो मूल भावों का उल्लेख किया है— करुणा और प्रेम, उनमें से करुणा शिवाजी के कर्मों का प्रेरक तत्त्व है। इस लोक-रक्षक भाव से प्रेरित शिवाजी का प्रत्येक कार्य सुन्दर, कोमल व प्रेरणा प्रदायक हैं। कवि की अनुभूति का तादात्म्य नायक की अनुभूतियों से है और पाठक भी उसी अनुभूति का अनुभव करते हैं। प्रतिनायक के प्रति जो भाव कवि व नायक के हैं, वही भाव पाठक भी अनुभव करते हैं। शिवाजी को जब क्रोध आता है तो साथ-साथ कवि व पाठक भी क्रोधित होते हैं। शुक्ल जी के अनुसार इसका कारण इस अनुभूति की प्रकृति का मंगल विधायिनी होना है। शुक्ल जी के शब्दों में भूषण को लोक-हृदय की पहचान थी। अतः कवि ने सर्व-साधारण की अनुभूति को अपनी अनुभूति बना कर व्यक्त किया है।

भूषण रस-सिद्ध कवि थे। उनके काव्य में प्रधान रूप से वीर रस अभिव्यंजित हुआ है। उनके शृंगार रस के चालीस छन्दों को छोड़कर शेष रचनाओं (शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक) में वीर रस की ही प्रधानता है। अन्य रस भी इनके काव्य में हैं परन्तु उनकी सत्ता तो वीररस के पोषक के रूप में

¹ रस मीमांसा : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 65

² वही, पृ. 65-66

है या नगण्य है। कवि का मूल लक्ष्य नायक शिवाजी के कर्म सौन्दर्य को उत्साहपूर्वक अभिव्यक्ति देना है। उनके काव्यों की रस ध्वनि के रूप में वीरता के उद्गार ही आये हैं। शिवाजी के वीर कर्मों का उल्लेख करना भूषण के काव्यों (शिवराज भूषण और शिवा बावनी) का प्रमुख लक्ष्य है। परन्तु जैसा कि ऊपर विवेचन किया गया है, शिवाजी के कर्मों के मूल में करुणा का भाव निहित है। मूल भाव की प्रकृति मंगलविधायिनी होने के कारण उनके कोमल और कठोर सभी कार्य सुन्दर प्रतीत होते हैं।

वीर रस

शिवा बावनी का प्रमुख स्वर वीर रस का है। वीरता का आदर्श छत्रपति शिवाजी को कर्म की प्रेरणा औरंगजेब द्वारा किए अत्याचारों से मिलती है। अतः शिवाजी आश्रय है, औरंगजेब आदि अत्याचारी आलम्बन है। आलम्बन व उसके सैनिकों द्वारा जनता पर किया गया अत्याचार, हिन्दुओं के देवस्थानों व उनकी पवित्र पुस्तकों को नष्ट करना, उनकी धार्मिक स्वतंत्रता का हनन करना आदि उद्दीपन है। अनुभाव व व्यभिचारी भावों से युक्त यहाँ रसनिष्पत्ति के सभी अंग विद्यमान हैं। कवि की विशिष्ट शैली के कारण, वीरतापरक कार्यों के प्रत्यक्ष चित्र कवि ने बहुत कम प्रस्तुत किये हैं। शिवाजी प्रत्यक्ष रूप में कहीं दिखाई नहीं देते। सब कुछ अप्रत्यक्ष एवं संश्लिष्ट ढंग से कवि ने कह दिया है। शिवाजी का व्यक्तित्व पूरे काव्य पर छाया हुआ है। उनकी वीरता के प्रभाव के चित्र स्थान-स्थान पर परिलक्षित होते हैं। कवि की दृष्टि निरंतर शिवाजी के वीर कर्मों के (शत्रु तथा प्रजा पर) प्रभाव पर केन्द्रित रहती है। भूषण ने शिवाजी के सैन्य-संगठन, युद्ध-संचालन आदि का वर्णन इतना नहीं किया है जितना 'शत्रुओं' पर उनकी धाक का¹ अतः यह कहना उपयुक्त होगा कि भूषण के काव्यों में शुद्ध वीर रस का वर्णन वीर और पूजा आदर्श के अनुकूल है।² कवि जिस मूल भावना का (वीर रस का) चित्रण कर रहा है वह अभिव्यक्ति के माध्यम से सर्वसाधारण तक पहुँचती है तथा उसका साधारणीकरण होता है क्योंकि भूषण को लोक हृदय की पहचान³ है। उन्होंने जनता की भावनाओं को समझते हुए अपने काव्य को लोक-हृदय की भाव भूमि⁴ पर आधारित किया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भूषण के काव्य में शिवाजी के युद्ध वीर रूप के प्रत्यक्ष दर्शन बहुत कम होते हैं। उनके वीर कार्यों की सूचना, शत्रु पर पड़े प्रभाव के माध्यम से मिलती है। जैसे औरंगजेब चौंक-चौंक कर अपने सरदारों से कहता है कि जिसने अफजल खाँ को पकड़ कर खुले मैदान में मार डाला, जिसने बीजापुर और गोलकुण्डा (के गर्व) को भी समाप्त कर दिया, जिसने फ्रांसीसियों की भाँति फिरंगियों (अग्रजों) को खदेड़ा है और हबशियों और तुर्कों के जहाज डुबो दिये हैं। जिसने देखते-देखते रुस्तमें जमाँ को मिट्टी में मिला दिया और जिसकी सुनी हुई गर्जना की याद भी आज मुझे बड़ा कष्ट दे रही है, वह शिवाजी कहाँ तक आ पहुँचा है, हे मित्रों! तुम उसका पता चारों ओर से लगाते रहो—

अफजल खान गहि जाने मयदान मारा,

बीजापुर गोलकुण्डा मारा जिन आज है।

'भूषण' भनत फरासीसी त्यों फिरंगी मारि,

¹ भूषण ग्रंथावली : मिश्र बन्धु, सातवाँ संस्करण, पृ. 56

² भूषण और उनका साहित्य : डॉ. राजमल बोरा, प्रथम सं. पृ. 241

³ रस सिद्धान्त : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 211 (प्रथम सं.)

⁴ डॉ. राजमल बोरा, पृ. 240

हबसी तुरुक डारे पलटि जहाज है।।
 देखत मैं खान रुसतम जिन खाक किया,
 सालति सुरति आजु सुनी जो अवाज है।
 चौकि-चौकि चकता कहत चहुंधा ते यारो,
 लेत रहौ खबरि कहां लै सिवराज है।।”

प्रस्तुत उद्धरण शिवाजी को, वीर कार्यों द्वारा, मिली सफलताओं की सूचना देता है जिसका आतंक शत्रु पक्ष पर छाया हुआ है। शिवाजी की सेना का युद्धार्थ प्रयाण करते समय भी लेखक उसके प्रभाव को प्रकट करता है। यथा—

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढि,
 सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
 ‘भूषण’ भनत नाद बिहद नगारन के,
 नदी-नद मद गैबरन कै रलत हैं।
 ऐल-फैल खैल-मैल खलक में गैल-गैल,
 गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।
 तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि
 थारा पर पारा पारावार यो हलत हैं।।।।

इसी प्रकार कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं जिनमें वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है—

- (1) कोट गढ़ ढाहियतु एकै पातसाहन के
 एकै पातसाहन के देस दाहियतु हैं।
 ‘भूषण’ भनत महाराज सिवराज एके,
 साहन की फौज पर खग्ग बाहियतु हैं।
 क्यों न होहिं बैरिन की बौरी सुनि बैर बधु,
 दौरनि तिहारै कहौ क्योकं निबाहियतु है।
 रावरै नगारे सुनि बैरवारे नगरनि
 नैनवारे नदन निवारे चाहियतु हैं।।40।।
- (2) छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
 मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट में।
 ताहि समैं सिवराज हुकुम के हल्ला कियो,
 दावा बांधि परा हल्ला बीरबर जोट में।
 ‘भूषण’ भनत तेरी हिम्मत कहां लौ कहौ,
 किन्मति इहों लागि है जाकी झटझोट में।
 ताव दै दै मूछन कंगूरन पै पांव दै दै,
 अरि मुख घाव दै दै कूदि परै कोट में।।22।।

¹ भूषण ग्रंथावली : टीकाकार-राज नारायण शर्मा, शिवाबावनी, संख्या-31

प्रथम कविता में शिवाजी के युद्ध-प्रणाली के चित्र प्रस्तुत कर कवि ने उसके प्रभाव का चित्र बहुत सजीव ढंग से चित्रित किया है। शिवाजी से शत्रुता की सूचना पाते ही शत्रु-स्त्रियाँ पागल हो उठती हैं तथा उनकी सेना के आगमन की सूचना स्वरूप बजते हुए नगाड़ों की ध्वनि सुनकर शत्रु नगरवासियों के नेत्रों से अश्रु प्रवाह होने लगता है। प्रस्तुत कविता से शिवाजी की वीरता ध्वनित है।

वीर शिवाजी युद्ध कला-प्रवीण थे। शत्रुओं के भीषण आक्रमण में उनका नेतृत्व पाकर मराठा सैनिक किस प्रकार विजय-श्री का वरण करते थे, इसका बहुत ही ओजमयी शैली में द्वितीय कवित्त में वर्णन हुआ है। प्रस्तुत पद्य में वीर रस एवं ओजगुण की व्याप्ति द्रष्टव्य है।

मुगलों के विशाल साम्राज्य से वीर शिवाजी ने जिस साहस के साथ टक्कर ली और उसके मिथ्याहंकार को भंग कर अपनी धाक जमा दी, उसका भूषण ने अत्यन्त सजीव चित्रण 'उत्प्रेक्षा' तथा 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकारों के प्रयोग द्वारा किया है। वीर रस की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत कविता में देखने योग्य है—

उत पातसाहजू के गजनके ठट्टे छूटे,
 उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
 इतै सिवराज जू के छूटे सिंहराज औ,
 बिदार कुम्भ करिन के चिक्करत मारे हैं।
 फौजें सेख सैयद मुगल और पठानन की,
 मिलि इखलाल खां हू मीर न संभारे है।
 हद् हिन्दुवान की बिहद् तरवारि राखि,
 कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारै है॥23॥

शिवाजी की सेना के प्रयाण के समय बजने वाले नगाड़े जहाँ एक और उनके साहस एवं उत्साह को अभिव्यक्त करते हैं वहाँ दूसरी ओर शत्रु पक्ष व शत्रु नगरवासियों के हृदय में भय का संचार करते हैं—

नग भहराने, ग्राम नगर पराने सुनि,
 बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥21॥
 शिवाजी के डंके की आवाज से पहाड़ भराभरा कर गिर पड़े—
 'भूषन' भनत नाद नगारन के,
 नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं।
 नग भहराने, ग्राम नगर पुराने सुनि,
 बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥21॥

इससे ध्वनि की विराटता, बुलन्दी का आभास हो रहा है। इस प्रकार इन उदाहरणों द्वारा शिवाजी के युद्धवीर रूप की अभिव्यक्ति हुई है।

धर्मवीर—शिवाजी को कर्म की प्रेरणा शत्रु द्वारा लोक पर किये गये अत्याचारों से मिलती है। इन अत्याचारों के मूल में औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति है। उसके सैनिक (देवल गिरावते फिरावते निसान अली) हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ते हैं, अली के झंडे फहराते हैं, तथा स्थिति यह हो गई है कि—

“कासी हूँ कि कला गई, मथुरा मसीत भई”॥19॥

औरंगजेब ने

“कीन्हीं कल्ल मथुरा दोहाई फेरी रब को।
खोदि डारे दैवी दैव, सहर मुहल्ला बाके,
लाखन तुरुक कीन्हें छूट गई तबकी”॥20॥

हिन्दुओं पर जब इस प्रकार के अत्याचारों की चरम सीमा हो गई तो धर्मवीर शिवाजी जन-रक्षक, धर्म रक्षक के रूप में प्रकट हुए तथा उन्होंने—

“हद्द हिन्दुवान की विहद्द तरवारि राखि
कैयो बार दिल्ली के गुमान घरि डारै हैं”॥23॥

शिवाजी के युद्धवीर रूप के मूल में करुणा प्रधान है। अत्याचारों से पीड़ित समाज को देखकर नायक के हृदय में करुणा का भाव जागृत होता है तथा अत्याचारी के कारण क्रोध का भाव। नायक उत्साहयुक्त होकर पीड़ित जनता का संरक्षक बनता है। शिवाजी ने भी वही किया—

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।
मीडि राखे मुगल, मरोडि राखे पातसाह,
बैरी पीसि रखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेज-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥51॥

तथा

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद-विधि सुनी में।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी में॥50॥

उपर्युक्त कवित्तों में शिवाजी का धर्मरक्षक रूप व्यंजित होता है। वेदों की रक्षा करने में तथा देवस्थानों की रक्षा करने में शिवाजी के धर्मवीर रूप का चित्रण हुआ है। इससे स्पष्ट है कि उस युग में वेद की मान्यताओं पर कुठाराघात हो रहा था जिससे वेदों में आस्था रखने वाले दुःखी थे। छत्रपति शिवाजी ने वेदों की मान्यताओं में बाधक सभी कारणों को दूर कर वेदों की रक्षा की। बाधक तत्त्वों को दूर करने में शिवाजी का वीर रूप व्यंजित हुआ। हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तकों की रक्षा के साथ-साथ, हिन्दू-धर्म के आचरण के अनुकूल सिर पर चोटी रखना, जनेऊ धारण करना, गले में माला पहनना, देवताओं की पूजा पाठ, राम नाम का पाठ आदि हिन्दू संस्कृति के आदर्श मूल्यों के व्यावहारिक पक्ष को मूर्त करने वाले चित्र हैं जिनकी रक्षा कर शिवाजी ने हिन्दू धर्म के मूल्यों को प्रतिष्ठित किया। धर्म रक्षक शिवाजी ने सिपाहियों की रोटी की व्यवस्था भी की। जीवन की यथार्थ समस्या को भी हल किया। साथ ही अत्याचारी मुगल सत्ताधारी की शक्ति को भी नष्ट कर दिया—

“मीड़ि राखे मुगल, मरोड़ि राखे पातसाह
बैरि पीरी राखे

इस प्रकार शिवाजी (राखी हिन्दुवान) हिन्दुओं के हिन्दुत्व को बचा कर धर्मवीर रूप में प्रकट हुए—

“धरा में धरम राख्यौ, राख्यौ गुन गुनी मैं”

दानवीर व दयावीर

शिवाजी का दानवीर व दयावीर रूप शिवाबावनी में अधिक नहीं उभरा है। शिवराज भूषण में दयावीर व दानवीर के अनेक चित्र उपलब्ध हैं। शिवा बावनी में दयावीर का एक उदाहरण उपलब्ध है। जब कवि भूषण औरंगजेब द्वारा पूछे जाने पर कि वह बार-बार शिवाजी की प्रशंसा और औरंगजेब की बुराई क्यों करते हैं, कहते हैं—

“तुम बाकौ पाय के जरूर इन छोरो वह,
रावरे वजीर छोर देत करि परजा” 1139॥

शिवराज भूषण में कवि कहता कि शिवाजी के समान संसार में कोई दूसरा दीनदयालु नहीं है—

“दीन दयालु न तोसो दुनी” - शिव राज भूषण- 167

शत्रुओं द्वारा गिड़गिड़ाने पर वह उन्हें प्राणदान देते हैं—

“दोहा के कहे ते अरि लोग ज्याइयतु है।”

शि. रा. भू. 116

शिवाजी की दानवीरता से भिक्षुक भोज और विक्रम को भूल गये थे तथा राजा बलि और बेनु की कीर्ति फीकी पड़ गई थी—

भूलिगै भोज से विक्रम से और
भई बलि बेनु की कीरति फीकी॥

शि. रा. भू. 243

कवि के अनुसार शिवाजी मानवता के भूषण, महान दानी और सिंह सदृश शक्तिशाली थे—

‘नरु भूषण दानी बडौ सरजा सिव हैं।’

शि. रा. भू. 1397

इस प्रकार स्पष्ट है कि भूषण के काव्य का मूल स्वर वीर रस है।

अन्य रस

वीर रस के पोषक के रूप में शिवा बावनी में अन्य रसों की अभिव्यंजना भी हुई है। उनमें प्रमुख हैं— भयानक, रस, रौद्र, अद्भुत रस और वीभत्स रस। शृंगार का चित्रण इस कृति में नहीं हुआ है। भूषण के प्रकीर्ण रूप में उपलब्ध चालीस छन्दों में शृंगार रस का चित्रण हुआ है जिसमें शृंगार के दोनों पक्षों के चित्र कवि ने खींचे हैं। भूषण द्वारा किया गया शृंगार रस का चित्रण यह सिद्ध करता है कि रीतिकालीन वातावरण में वह शृंगारी कवियों से किसी प्रकार कम नहीं थे। परन्तु उन्होंने शृंगार रस की अपेक्षा वीर रस को अपनाकर इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

भयानक रस

शिवा बावनी में भयानक रस का वर्णन बहुत विस्तार से हुआ है परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि यह शिवाजी के पक्ष में न होकर शत्रु पक्ष में हुआ है। वीर शिवाजी के कारण औरंगजेब आदि उनके शत्रु

संतप्त हैं, आतंकित है, जिसके परिणामस्वरूप शिवाजी के आक्रमण का सामना करने की उनकी शक्ति क्षीण हो लगती है।

शिवाजी के आक्रमण की प्रणाली तथा उनकी वीरता के कारण औरंगजेब, उसके सरदार, अन्य शासक, सैनिक एवं शत्रुओं की स्त्रियाँ तथा नगरवासी सभी आतंकित हैं। आतंक के यह चित्र अपरोक्ष रूप से शिवाजी की वीरता के प्रभाव को ही रेखांकित करते हैं।

शिवाजी ने बीजापुर के शासक को पराजित किया, अफजलखां का वध किया, शाइस्ताखों की दुर्दशा की, तथा अन्य अनेक सामन्तों को भी भयभीत रखा। इन घटनाओं के कारण—

(1) बीजापुर और बिदनूर के शूरवीर धनुष पर बाण नहीं चढ़ाते अर्थात् शिवाजी का सामना करने के लिए शस्त्र धारण नहीं करते—

“विज्ञपुर बिदनूर सूर सर धनुष न संधहि॥30॥

(2) फिरंगी चिन्ता के कारण तथा जंजीरावासी हवशी भय के कारण रात्रि में घड़ी भर भी नहीं सोते—

‘फिरंगाने फिकिर, और हदसनि हबसानै,

‘भूषन’ भनत कोड सोवत न घरी हैं॥32॥

(3) अफजल खां वध, बीजापुर गोलकुण्डा- पराजय के समाचार से औरंगजेब अत्यन्त भयभीत है—

“चौकि-चौकि चकत्ता कहत चहुंधा ते यारो,

लेत र्हो खबरि कहौं लै शिवराज है॥31॥

शिवाजी से भेंट के समय औरंगजेब कितना सावधान है इसका अत्यन्त सजीव एवं प्रभावशाली चित्र कवि ने अंकित किया है—

कैयक हजार किए गुर्ज-बरदारी ठाढ़े,

करिके हुस्यार नीति पकरि समाज की।

राजा जसवन्त को बुलाय कै निकट राख्यो,

तेरु लखै नीरे जिन्दे लाज स्वामि-काज की।

भूषन तबहुं ठठकत ही गुसलखाने,

सिंह लौ झपटे गुनि साहि महाराज की।

हटकि ह्यार फड़ बांधि उमरावन की,

कीन्हीं तब नौरंग ने भेट सिवराज की॥14॥

(4) औरंगजेब के सरदार भी, शिवाजी से युद्ध करना नहीं चाहते। वे कहते हैं—

‘भीख मांगि खैहैं, बिन मनसब रैहैं

पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै॥27॥

(5) शत्रुओं की स्त्रियों की दुर्दशा, उनका भय से व्याकुल होना तथा घबराए रहने का वर्णन भी भयानक रस के अन्तर्गत आते हैं। औरंगजेब के हरम की स्त्रियों के मन में शिवाजी का भय समा गया है। वर्षा के उमड़ते हुए मेघों आदि को देखकर उन्हें प्रतीत होता है कि—

बहुत न होंहि दल दच्छिन उमडि, आए,
घटा ये न होय इभ सिवाजी हंकारी है।
दामिनी-दमक नाहि खले खग्ग वीरन के...

इस भय उत्पादक भ्रम के परिणामस्वरूप—

देखि-देखि मुगलों की हरमें भवन त्यागें,
उझकि-उझकि उठै बहत बयारी के॥4॥

शत्रु-स्त्रियों के भय के चित्र भूषण ने बहुत सजीव एवं प्रभावोत्पादक रूप में चित्रित किये हैं। महलों को छोड़कर भागती हुई स्त्रियों की दशा द्रष्टव्य है—

“तनिया न तिलक सुथानियाँ पगनियाँ न
घामै घुमरातीं छोड़ी सेजियां सुखन की”॥5॥

वे आगरे के महलों की चार दीवारी को फांदकर भाग रही हैं—
आगरे अगारन की नांघती पगारन,

संभारती न बारन बदल कुम्हलानियाँ॥6॥

इस भगदड़ की तुलना कवितावली के सुंदर कांड में लंकादहन के समय तुलसीदास द्वारा चित्रित रानियों की भगदड़ से की जा सकती है।

“पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहें
जाति हैं परानी गति जानी गज चालि है।”

(कवितावली)

शिवाजी के आक्रमण के भय से भयभीत इधर-उधर भटकती बेगमों का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

“उतरि पलंग ते न दिया है धरा पै पग,
तऊ सगबग निसि दिन चली जाती है।
कोऊ करें घाती, कोऊ रोती पीट छाती धरे
तीन बेर खाती तेऽब तीन (बीन) बेर खाती हैं॥8॥

x x x
ऐसी अरिनारी सिवराज बीर तेरे त्रास,
पायन में छाले परे कन्दमूल खाती है

x x x
कंज कैसे कली बिन पानी मुरझाती है।

आदिल शाह की बेगमें कहती हैं—

‘अब कहां सोवो सुख सिंहहि जगाय के॥28॥

किले के भीतर सुरक्षित रहने पर भी भय के कारण शत्रु स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं—

‘गिरत गम्भ कोट गरम्भ चिंजी चिंजा डर’॥30॥

(6) नगरवासियों की भगदड़ के भी सजीव चित्र इस कृति में उपलब्ध हैं—

“नग महराने, ग्राम नगर पुराने, सुनि
बाजते निसान सिवराज जू नरेस के।
x x x
बीजापुर-विपत्ति बिडरि सुनि भजे सब
दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है॥”32॥

अतः यह सिद्ध होता है कि शिवा बावनी में शिवाजी के आतंक का वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं सजीव बन पड़ा है। इस भय को शत्रु ने जैसा अनुभव किया या भय की भावना उनमें जैसे व्याप्त थी, उसी रूप में चित्रित है। इस आतंक-चित्रण द्वारा नायक की वीरता अप्रत्यक्ष रूप से सिद्ध होती है। अतः कहा जा सकता है कि भयानक रस सहायक बन कर ही आया है।

रौद्र रस

रौद्र रस भी वीर रस का पोषक होकर आया है। शत्रु के अत्याचारों को देखकर नायक का क्रोधित होना स्वाभाविक है। अतः जहाँ भी शत्रु के अत्याचारों का चित्रण हुआ है अथवा नायक के प्रति अनुचित व्यवहार किया गया है। वहाँ नायक (शिवाजी) का रौद्र चित्रित किया गया है। शत्रु (औरंगजेब) द्वारा शिवाजी के प्रति अपमानजनक व्यवहार करने पर शिवाजी का क्रुद्ध रूप प्रकट हुआ है :-

सबन के ऊपर ठाढो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छः हजारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
‘भूषन’ भनत महाबीर बलवान लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भयो,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे॥15॥

प्रस्तुत कवित्त का प्रसंग शिवाजी औरंगजेब भेंट है। उचित सम्मान के अभाव में तथा छः हजारी मनसबदारी की पंक्तियों में खड़ा किये जाने पर, अपमानित शिवाजी ‘बलकन लाग्यो’- क्रोध के उबलने लगे तथा उन्होंने शत्रु के दरबार में शत्रुओं से घिरे हुए भी जो क्रुद्ध होकर गर्जना की उसका परिणाम हुआ। “सारी पातसाही के उड़ाए गए जियरे।”

शिवाजी ने औरंगजेब के दरबार में “कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।”

शिवाजी की प्रतिक्रिया तथा उनके तमतमाए चेहरे को देख बादशाह का चेहरा अपमान से स्याह हो गया तथा सिपाहियों का मुख भय से पीला पड़ गया।

इसी प्रकार शिवाजी का रौद्र रूप और उसका प्रभाव निम्नलिखित उदाहरणों में प्रकट हुआ है :-

‘कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज बीर
धौसा की पुकार ते पहार धरकत है।’

रौद्र रस के वर्णन में नायक के साहस का परिचय मिलता है, अतः रौद्र रस, वीर रस को पुष्ट करने के लिए ही आया है।

अद्भुत रस

शिवाजी द्वारा किये गये अनेक अद्भुत कार्यों से शत्रु भयभीत है तथा दिन रात अपनी रक्षा के उपाय सोचने में संलग्न रहता है। उसे शिवाजी के कार्य विचित्र एवं आश्चर्यजनक लगते हैं। शिवाजी के इन्हीं कार्यों को देखकर कवि भूषण कहते हैं कि महाराज शिवाजी आपका व्यक्तित्व वस्तुतः विलक्षण है।

सुमन में मकरन्द रहत है साहि नन्द,
मकरन्द सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस में हंस बंस रहत है तेरे जस
हंस में रहत करि मानस बिसोध है।
'भूषण' भनत भौंसिला भुवाल भूमि तेरी
करतूति रही अद्भुत रस ओध है।
पानि में जहाज रहे लाज के जहाज
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है।

शिवा बावनी, सं. ओमप्रकाश शास्त्री, सं. 50

प्रस्तुत कवित्त में विरोधाभास एवं यमक अलंकारों के माध्यम से अद्भुत चमत्कार उत्पन्न किया गया है। शिवाजी के उज्ज्वल यश, शुभ कृत्य एवं विनीत निरभिमानी स्वभाव को सजीव रूप में व्यंजित किया गया है।

वीभत्स रस

युद्ध क्षेत्र के वर्णन में कालिका, भूत प्रेत, भेरव का वर्णन में वीभत्स रस का ही वर्णन है—

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचार निसाचरहू,
मिली मिली आपस में गावत बधाई है।
भेरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।
किलकि किलकि के कुतुहूल करति कालि,
डिम डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछे सिव सों समाजु आजु कहां चली,
काहूं पै शिवा नरेश भृकुची चढ़ाई है।

इस कवित्त की अन्तिम पंक्तियों द्वारा शिवाजी का वीर रूप व्यंजित है। शिवाजी जब किसी पर क्रोध करते हैं तो रण भूमि में भूत, प्रेत आदि को निश्चित रूप से आहार प्राप्त होता है।

हास्य रस

भूषण के काव्य में हास्य रस के उदाहरण कम हैं। कुछ **हास्यास्पद** कथनों द्वारा विनोदाभिव्यक्ति के प्रयास कवि ने किए हैं। उदाहरणार्थ दिल्ली को सितोर की दुलहिन बतलाते हुए कहा है—

“बाजत दमामे लाखो धौसा आगे धहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलह सिवाजी भयों दच्छिनी दमामे वारे,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की॥45॥

करुण व शान्त रस के स्वतंत्र उदाहरण शिवा बावनी में उपलब्ध नहीं हैं।

भूषण के इस काव्य का मूल रस वीर रस ही है। शिवा बावनी एक मुक्तक काव्य है अतः अंगी रस की चर्चा करना उचित नहीं होगा परन्तु “एक ही नायक का प्रधान रूप से चित्रण होने के नाते प्रबन्ध काव्य के गुण भी इसमें हैं। कम से नायक प्रबन्ध काव्यों के नायक के समान है।” डॉ. नगेन्द्र के अनुसार बहुव्याप्ति, प्रबन्ध काव्य के नायक के चरित्र की मूल्यव्याप्ति जो भाव पक्ष में मूलभाव या अंगी रस का निर्धारण करती है, तथा उसके सार भूत प्रभाव का अभिव्यंजन होना² आदि अंगी रस के लक्षण हैं। इन लक्षणों के आधार पर भूषण के काव्य में वीर रस ही अंग रस समान होगा। भूषण पाठकों में वीर रस की भावना जगाने में सफल रहे हैं। शुक्ल जी के शब्दों में “भूषण अच्छे कवि थे, जिस रस को उन्होंने लिया पूरा आवेश उनमें था।”³

(घ) शिवा बावनी : प्रतिपाद्य

शिवा बावनी कवि भूषण द्वारा रचित 52 छन्दों का संग्रह है। एक किवदन्ती के अनुसार भूषण ने शिवाजी को 52 छन्द सुनाए थे उन्हीं बावन छन्दों का संग्रह शिवा बावनी है। इसकी कोई हस्तलिखित प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। स्वतंत्र रचना के रूप में इसका सर्वप्रथम उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने 1907 ई. में किया था तथा उन्होंने भी इसे स्वतंत्र ग्रंथ न मानकर संग्रह माना (“यह कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं”, अथच भूषण के 52 छन्दों का संग्रह मात्र है”)।⁴ उन्होंने तर्क दिया है कि इसका वन्दना वाला छन्द ही शिवराज भूषण से लिया है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र संवत् 1946 से पूर्व इस ग्रंथ का अस्तित्व नहीं मानते। शिवा बावनी के विभिन्न स्थानों से प्रकाशित विभिन्न संस्करणों में छन्दों के क्रम प्रायः भिन्न-भिन्न हैं। मिश्र बन्धुओं ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है “यह कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, वरन् भूषण जी के 52 छन्दों का एक संग्रह मात्र है, इसी हेतु प्रचलित प्रतियों का क्रम छोड़कर हमने अपना नया क्रम स्थिर किया है, क्योंकि हम उक्त प्रचलित क्रम को बहुत ही अनुपयुक्त समझते हैं।”

शिवा बावनी में संग्रहीत सभी छन्द सीधे शिवाजी से सम्बन्धित नहीं हैं। संभवतः इसका कारण “प्रकाशकों की हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञता तथा अल्प इतिहास ज्ञान ही रहा हो।” डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने शिवा बावनी के छन्दों में से कतिपय छन्दों के रचयिता भूषण अतिरिक्त अन्य कवियों को माना है।⁵

हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2, पृ. 289) के अनुसार शिवा बावनी भूषण की रचना है परन्तु सरदेसाई इसे भूषण का स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मानते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि शिवा बावनी एक संग्रह ग्रंथ है। इसका संपादन व संग्रह आधुनिक है तथा इसके सभी छन्द प्रामाणिक नहीं हैं। किसी हस्तलिखित प्रति की प्राप्ति के अभाव के कारण इसका रचनाकाल निश्चित नहीं किया जा सकता। यह संपादकों द्वारा किया गया संग्रह मात्र है।

¹ भूषण और उनका साहित्य : डॉ. राजमल बोस, पृ. 261

² भूषण ग्रंथावली : मिश्रबन्धु, सातवां संस्करण, पृ. 39

³ वही, पृष्ठ 108

⁴ द्रष्टव्य- भूषण : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम सं. पृ. 85-86

⁵ भूषण और उनका साहित्य : डॉ. राजमल बोस, पृ. 282

⁶ शिवा बावनी : टीकाकार राजनारायण शर्मा, छन्द संख्या 1

बावनी काव्य-रूप की एक परम्परा है। इसमें बावन छन्द रहते हैं जो प्रायः नागरी वर्णमाला के अक्षर-क्रम से रचित होते हैं। शिवा बावनी बावन छन्दों का संग्रह ग्रंथ है परन्तु यह छन्द अक्षर-क्रम से नहीं रचे गये हैं। यहाँ यह नामकरण केवल संख्या सूचक हैं। यह छन्द शिवाजी से सम्बन्धित होने के कारण इसे शिवा बावनी कहा गया है। इस ग्रंथ में शिवाजी का गौरवगान है। मुक्तक काव्य होने के कारण प्रत्येक छन्द में एक स्वतंत्र खण्डचित्र प्रस्तुत किया गया है। शिवाजी का वीरत्व, उनकी उदारता उनका धर्मरक्षक रूप, शत्रु पक्ष पर उनका आतंक, देश रक्षक आदि अत्यन्त ओजपूर्ण शैली में इसमें उपलब्ध है। वस्तुतः इस कृति का प्रतिपाद्य शिवाजी का कर्म सौन्दर्य है। यह कर्म सौन्दर्य शिवाजी के वीर कृत्यों में निहित है।

भूषण के काव्य के नायक शिवाजी वीरता के आदर्श हैं वे ही काव्य के 'आश्रय' हैं। वीर रस के नायक को कर्म की प्रेरणा लोक में होते हुए अत्याचारों को देखकर मिलती है तथा साथ ही अत्याचारों को देखकर भी एक ओर उसकी दृष्टि समाज पर होती है दूसरी ओर सामाजिक धर्म को बाधित करने वाले व्यक्ति पर। एक का रूप उसमें करुणा का भाव जाग्रत करता है, दूसरे का रूप उसमें क्रोध का। करुणा की प्रतिक्रिया दया में होती है और क्रोध की प्रतिक्रिया अत्याचारी के दमन में। अतः वीर रस के नायक में वीरता के लिए कर्म की ओर प्रवृत्ति होने में इन मूल भावों का होना आवश्यक हो जाता है। छत्रपति शिवाजी की वीरता के मूल में ये दोनों ही भाव हैं।

रीतिकाल में देश धर्मान्ध एवं कट्टर शासकों के अत्याचारों से पीड़ित था। औरंगजेब एवं उसके सामन्तों के अत्याचारों से पीड़ित राष्ट्र एवं हिन्दू जाति के लिए संरक्षण के लिए आदर्श लोक नायक के रूप में भूषण ने शिवाजी तथा छत्रसाल बुन्देला जैसे वीरों का यशोगान अपनी ओजपूर्ण वाणी में कर रीतिकालीन शृंगार मंडित कविता को वीरत्व-युक्त ओज पूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा जीवन-शक्ति प्रदान की। उस युग के दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं के नाम पर प्रशस्ति काव्य लिख रहे थे परन्तु उन शासकों में आदर्श लोकनायक के गुणों का अभाव था। अतः इन कवियों का काव्य चाटुकारिता का आभास देता था। ऐसे युग में भूषण ने छत्रपति शिवाजी के महान् एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हो उन्हें अपने काव्य का चरित-नायक बनाया। शिवा बावनी में "रीति रहित वीररसात्मक काव्य का सच्चा उत्कर्ष मिलता है।" इस काव्य को प्रशस्ति-काव्य भी कहा जा सकता है परन्तु यह एक ऐसा प्रशस्ति काव्य है जो राष्ट्रीय भावों का उद्भावक एवं पाठकों के हृदय में ओज का संचार करने में समर्थ है। भूषण को शिवाजी में युगों से खोई स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने की भावना दिखाई दी और उन्होंने शिवाजी का चरित-गान कर उन्हें उसी युग का नहीं वरन् आने वाले युगों का भी आदर्श लोकनायक बना दिया। भूषण ने शिवाजी को राष्ट्रीय सम्मान एवं भारतीय संस्कृति के गौरव का प्रतीक बना दिया।

शिवा बावनी में शिवाजी कहीं प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होते परन्तु उनके व्यक्तित्व तथा उनके कर्मों का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। शिवाजी द्वारा मुगलों की सेना पर आक्रमण के प्रत्यक्ष चित्र शिवा बावनी में एकाध ही उपलब्ध हैं। इनमें से निम्नलिखित दो चित्र द्रष्टव्य हैं—

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत हैं।
'भूषण' भनत नाद विहद नगारन के
नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं।
ऐल फैल खैल-भैल खलक में गैल गेल,

गजन की ठेल पेल सेल उलसत हैं।
 तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत, जिमि,
 थारा पर पारा पारावार यों हलत है।
 छूटत कमान अरु गोली बानन के,
 मुसकिल होति मुरचानहु की ओट में।
 ताही समे सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
 दावा बांधि परा हल्ला बीरबल जोट में।
 'भूषण' भनत तेरी हिम्मति कहां लौं कहीं,
 किस्मति इहां लगि है जाकी भटंझोट में।
 ताब दें दें मूछन, कंगूरन पै पांव दै दै,
 अरि मुख घाव दै दै कूदै परै कोट में॥22॥

प्रथम छन्द में युद्ध के लिए शिवाजी व उनकी सेना के प्रयाण का चित्र हैं। उनके रण-प्रयाण करते ही चारों ओर उत्तेजनापूर्ण वातावरण छा जाता है। द्वितीय छन्द में शिवाजी का नेतृत्व पाकर उनके सैनिक शत्रुओं के भीषण आमण में भी विजय प्राप्त करते थे, इसका चित्र अत्यन्त ओजमयी शैली में प्रस्तुत किया गया है। शिवाजी की विजय की गाथाएँ सुनकर “असुरन के सुसीने धरकतु है।” (छन्द संख्या 24) तथा उनका यशोगान देवलोक, नागलोक और नरलोक में हो रहा है—

“देव लोक नाग लोक, नरलोक गावें जस”॥24॥

उनकी वीरता के रंग को देखकर औरंगजेब के सभी रंग जाते रहे—

“सो रंग है” सिवराज बली

जिन नोरंग में रंग एक न राख्यो”॥25॥

शिवाजी के विभिन्न युद्धों के समाचार जानकर औरंगजेब निरंतर बेचैन रहता है—

चौंकि चौंकि चकता कहतं चहुंधा ते यारो,

लेत रहौ खबरि कहां लौ सिवराज हैं॥31॥

* * *

भूषण भनत, दिल्ली पति दिली धकधका

सुनि सुनि धाक सिवराज मर्दाने की॥46॥

वही औरंगजेब शिवाजी से मिलन के समय सुरक्षा की बहुत तैयारी करता है परन्तु इस पर भी डरते-डरते स्नानगृह के समीप उनके भेंट करता है—

कैयक हजार किए गुर्ज-बरदार ठाढे,

करिकै हुस्यार नीतिपकरि समाज की।

राजा जसवन्त को बुलाय कै निकट राख्यो,

तेऊ लखैं नीर जिन्हें लाज स्वामि-काज की।

भूषण तबहु ठठकत ही गुसलखाने,

सिंह लौं झपट गुनि साहि महाराज की।

हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की,
कीन्हीं तब नौरंग ने भेंट सिवराज की॥14॥

शिवाजी के आतंक का चित्रण कवि ने अत्यन्त सजीव किया है। इस आतंक का प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों में दिखाया गया है। औरंगजेब आतंकित है, उसके सामन्त तथा सैनिक आतंकित हैं, शिवाजी के डंके की आवाज सुन कर नगरवासियों में भगदड़ मच जाती है—

नग भहराने, ग्राम नगर पराने, सुनि
बाजत निसान सिवराज जू नरेस के॥2॥

औरंगजेब के भयभीत सामन्तों का कथन है—

भीख मांगि खैहैं, बिन मनसब रैहैं,
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज॥27॥

शिवाजी के आक्रमण की सूचना पाकर शत्रु स्त्रियों की दशा तो अत्यन्त दयनीय हो उठी है। कवि भूषण ने इनका अत्यन्त जीवन्त एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। मेघों की गर्जन में उन्हें शिवाजी की सेना के नगाड़ों का शब्द सुनाई देता है, दामिनी की दमन में उन्हें शिवाजी की सेना के हाथों में ली हुई नंगी तलवारों की चमक दिखाई देती है। मुगलों की बेगमें भयभीत होकर महलों को छोड़कर भाग जाती हैं। इस भगदड़ के सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं—

- (1) तनियां न तिलक सुथनिया पगनियां न,
घामें घुमराती छोड़ि सेजियां सुखन की॥5॥
- (2) आगरे अजारन की नाँघती पगारन,
संभारती न बारन बदन कुम्हलानियां॥6॥
- (3) भूषण भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगड़ जुड़ाती हैं॥7॥
- (4) उतरी पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेऊ सगबग निसिदिन चली जाती है।
अति अकुलाती मुरझाती, न छिपाती गात,
बात न सुहाती बोले अति अनखाती है।
भूषण भनत सिंह साहि के सपूत सिवा
तेरी धाक सुनै अरिनारी बिलखाती है॥8॥

यह शत्रु-नारियाँ अपने पतियों को समझाती है कि सेना सजाकर शिवाजी पर आक्रमण मत करो, व्यर्थ सोते हुए सिंह न जगाओ—

साजि चमू जानि जाहु सिवा पर,
सोवत सिंह न जाय जगाओ॥29॥

ऐसी स्थिति में एक सामन्त औरंगजेब से कहने का साहस बटोरता है—

बूड़ति है दिल्ली सो संभारे क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को॥34॥

तथा

फिरंगाने झिक्किरि, और हदसनि हबसाने,
भूषण भनत कोई सोवत न घरी है।
बीजापुर -बिपति बिडरि सुनि भजे सब,
दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है।
राजन के राज सब साहन के सिरजात,
आज सिवराज पातसाही चित्त धरी है।
बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार
धाम धाम धूम-धाम रूम साम परी है।।32।।

इन सब चित्रों से शिवाजी का वीर रूप उभर कर सम्मुख आता है। वह अत्याचारी को दण्ड देते हैं तथा पीड़ित की रक्षा करते हैं। औरंगजेब की धर्मान्धता के परिणामस्वरूप हुए हिन्दुओं पर घोर अत्याचार को देखकर शिवाजी 'मंगल का विधान' करने वाले मूल भाव करुणा से प्रेरित होते हैं। औरंगजेब के सैनिक हिन्दुओं के देवालय तोड़ डालते हैं तथा स्वधर्म की ध्वजा फहराते हैं। इन अत्याचारों का विरोध करने की सामर्थ्य किसी हिन्दू राजा में नहीं है। सभी कायर बन गए हैं। सिद्ध लोगों की सिद्धता चल गई, चारों ओर इस्लाम की दुहाई फिरने लगी। काशी, मथुरा आदि धार्मिक स्थलों का प्रभाव नष्ट हो गया। कवि कहता है कि ऐसे समय में यदि शिवाजी न होते तो हिन्दुओं को इस्लाम अपना पड़ता—

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे समय राव राने सबै गए लबकी-
सिद्ध की सिधाई गई, रही बात रब की।
कासी हूं की कला गई, मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न हो तो सुनति होती सबकी।।18।।

कवि शिवाजी के धर्मरक्षक रूप के महत्त्व को प्रतिपादित करने से पूर्व दूसरा चित्र प्रस्तुत करता है—

कुम्भकर्न असुर औतारी अवरंगजेब,
कीन्हीं कत्तल मथुरा दोहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी देव, सहुर मुहल्ला बाके,
लाखन तुरुक कीन्हें, छूट गई तबकी।।...
चारों वर्ण धर्म छोडि, कलमा निवाज पढि,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।।20।।

इस प्रकार के अत्याचारों से पीड़ित हिन्दू जनता की पुकार सुनकर तथा उसकी दुर्दशा देखकर ही शिवाजी इन अत्याचारों का विरोध करते हैं तथा पीड़ित हिन्दू जाति के संरक्षक रूप में प्रकट होते हैं। शिवाजी का संरक्षक व प्रेरक व्यक्तित्व "भारत के इतिहास की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।"

पीड़ित हिन्दू जाति की रक्षा में तत्पर शिवाजी का धर्मवीर रूप हिन्दू जाति की रक्षा, धार्मिक पुस्तकों व धार्मिक स्थलों की रक्षा, धार्मिक अनुष्ठानों व धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पवित्र चिन्हों की रक्षा

करने में प्रकट होता है। इस संदर्भ में शिवाजी के दो रूप प्रकट हुए हैं— पीड़ित के संरक्षक तथा अत्याचारी के दमनकर्ता?—

वेद राखे विदित, पुरान परसिद्ध राखे,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी, रोटी राखी सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर में।
मीडि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥51॥

स्पष्ट है शिवाजी ने वेदों की, प्रसिद्ध पुराणों की रक्षा की, हिन्दुओं की चोटी, जनेऊ व माला की, मन्दिरों की रक्षा की। अपने घरों में स्वधर्म पालन की स्वतंत्रता के संरक्षक शिवाजी ने वेदों की मान्यता पर होते हुए प्रहारों को देखकर, अपनी वीरता से इन बाधक तत्त्वों को दूर किया। प्रस्तुत पद में शिवाजी एक ओर धर्म-रक्षक हैं तो दूसरी ओर जनता को जीविका के साधन प्रदान करने वाले, सिपाहियों की रोटी की व्यवस्था के संरक्षक भी हैं। इस पद में हिन्दू धर्म के नष्ट होते हुए मूल्यों की पुर्नस्थापना व जीविका के साधकों की व्यवस्था का चित्र है तथा इस लक्ष्य में बाधक तत्त्वों के विनाश का चित्र है। प्रथम चित्र के मूल में करुणा प्रेरक भाव हैं तथा द्वितीय चित्र का प्रेरक भाव क्रोध हैं। इन दोनों बीज रूप भावों से प्रेरित नायक का कर्म सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है जिसके मूल में उत्साह है “कर्म का आनन्द, कर्म की उत्कटता, कर्म की दृढ़ता, सभी उत्साह जन्य हैं।” (डॉ. बोरा)। वस्तुतः प्रस्तुत कवित्त का पूर्ण सौन्दर्य उत्साह में है जिसे हटा देने से कवित्त तथ्यपरक हो जायेगा।

शिवाजी द्वारा हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा की सीमा के बढ़ने पर मुसलमानों पर हुई प्रतिक्रिया का चित्र कवि इन शब्दों में प्रस्तुत करता है—

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहत छाती,
बाढ़ी मरजाद जैसी हद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमास तुरकाने की॥46॥

औरंगजेब द्वारा प्रश्न किये जाने पर कि भूषण शिवाजी का यशोगान क्यों करते हैं, वह उत्तर देते हैं—

तुम बाकौ पायके जरूर रण छोरो वह
रावरे वजीर छोरि देत करि परजा॥39॥

अर्थात् शिवाजी दयावीर भी है। तुम उनके सामने भय से रणस्थल त्याग देते हो परंतु वह तुम्हारे वजीरों को पकड़ कर उन्हें प्रजा की भांति छोड़ देता है। उनकी दानवीरता के कारण याचक गण भोज और विक्रम को भूल गए तथा राजा बलि और बेनु की कीर्ति फीकी पड़ गई है—

भूलिगे भोज से, बिक्रम से और भई
बलि बेनु की कीरति फीकी॥शिवराज भूषण 243॥

भूषण के काव्य के नायक शिवाजी का औरंगजेब से विरोध का कारण जातीयता की भावना न होकर औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति है। भूषण अनेक स्थल पर बाबर, हुमायूं, अकबर आदि मुगल सम्राटों की

प्रशंसा करते हैं कि उन्हें हृदय में हिन्दुओं के प्रति उदार भाव थे। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों की अपनी-अपनी मर्यादाएँ बनी रहने दीं—

बब्बर अकबर हिमायूं हर बांधि गए,
हिन्दू और तुएक को, कुरान वेद ढब की।
इन पातसाहन में हिन्दु की चाह हुति,
जहाँगीर साहजहां साख पूरे तब की।

परन्तु अब तो

कासी हूं की कला गई मधुर मसी भई
शिवाजी न होते तो सुनति होति सबकी॥19॥

सिद्ध है कि शिवाजी द्वारा औरंगजेब का विरोध किये जाने का एक कारण धार्मिक अनुदारता थी, उसके दुष्कर्म थे। औरंगजेब का आचरण, अपने पिता शाहजहाँ व भाई दारा के प्रति उसका व्यवहार ऐसे कारण थे कि कवि के हृदय में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। औरंगजेब ने अपने पूज्य पिता को बन्दी बनाया। यह कार्य मुसलमानों के पवित्र स्थान मक्का को आग लगाने जैसा घोर अपराध है। सगे भाई दारा का वध करवाया। मुराद का विश्वास कुरान और खुदा की शपथ खाकर जीता परन्तु फिर उसके साथ विश्वासघात किया।

किबले कौ ठौर बाप बादसाह साहजहां
ताको कैद कियोमानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा, वाको, पकरिकै मारि डारयो,
मेहरहू नाहि मां को जायो सगो भाई है।
बन्धु तौ मुराद बक्स आदि चूक करबै को,
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है।
'भूषण' सुकवि कहै, सुनो नवरंगजेब
ऐसे काम कीन्हें तब पातसाही पाई है॥22॥

पिता व अग्रज दारा के साथ औरंगजेब के दुर्व्यवहार का स्मरण कर कवि का आक्रोश पुनः इन शब्दों में व्यक्त होता है—

हाथ तस्बीर लिए प्रातः उठे बन्दगी को,
आपही कपट रूप, कपट सुजप के
आगरे में जाय दारा चौक में चुनाव लीन्हों,
छत्र हूं छिनायो मानो मरे बूढ़े बाप के।
कीन्हों है सगोत घात सो मैं नहिं कहौं फेरि
पील पै तुरायो चार चुगल के गप के।
भूषण भनत छरछंदी मतिमन्द महा,
सौ सौ चूहे खाइ कै बिलारी बैठी तप के॥13॥

वस्तुतः औरंगजेब से भूषण तथा उनके नायक शिवाजी का विरोध उसकी आसुरी वृत्ति के कारण था। कवि ने एक स्थल पर कहा है—

‘कुम्भकन्न असुर औतारी अवरंगजेब॥20॥

औरंगजेब की इन्हीं असत् नीतियों के कारण भूषण ने सत् पक्ष के संरक्षक शिवाजी का यशोगान किया। इस यशोगान के माध्यम से कवि ने अन्याय के प्रति अपना प्रबल विरोध प्रकट किया है। इस विरोध को देख कुछ लोग भूषण को जातीय कवि की संज्ञा देने की चेष्टा करते हैं। वास्तव में भूषण ने हिन्दुओं के देवालया, धार्मिक पुस्तकों व धार्मिक आचरणों की चर्चा की है परन्तु कुरान व इस्लाम का विरोध कहीं नहीं किया उन्होंने तो अन्य मुगल सम्राटों की प्रशंसा की है (द्रष्टव्य छन्द सं. 19) क्योंकि उनकी नीति किसी धर्म विशेष के विरोध में नहीं थी, वरन् उदार नीति थी।

शिवाजी के यशोगदान के मूल में वस्तुतः भूषण की राष्ट्रीय भावना ही निहित है। राष्ट्रीय साहित्य का संबंध अपने युग की चेतना से प्रत्यक्ष होता है। भूषण के काव्य में अपने युग के संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। अपने युग की हलचलों को भूषण ने प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया है। उस युग में हो रहे धार्मिक अत्याचारों का उल्लेख किया है। ऐसे समय में युग की माँग पर जो नायक कर्म में प्रवृत्त होकर लोक-रखा करता है, लोक श्रद्धा के पात्र उसके धार्मिक ग्रंथों, स्थलों व मान्यताओं की रक्षा करता है वह जनता का श्रद्धाभाजन बनता है। भूषण ने ऐसे ही लोकनायक की प्रशंसा की। शिवाजी ऐसे ही नायक थे जिन्होंने स्वदेश को अत्याचारी के अत्याचारों से मुक्ति दिलवाने का प्रयास किया। भूषण ने अपने युग के प्रायः उन सभी महान् व्यक्तियों की चर्चा की है जिन्होंने देश की राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा में योगदान दिया। छत्रसाल, साहूजी, कुमाऊँ नरेश, गढ़वाल नरेश आदि अनेक वीरों की प्रशंसा में कवित्त रचे। दारा की भी प्रशंसा की क्योंकि उसने यहाँ की राष्ट्रीय भावना को हानि नहीं पहुँचाई। डॉ. देवराज के शब्दों में— वह साहित्य जो ऐतिहासिक महत्त्व को प्राप्त करता है, स्वभावतः युग जीवन के तत्त्वों से ग्रथित होता है— वह अपने समय के सामाजिक यथार्थ को प्रकट या प्रतिफलित करता है, साथ ही युग जीवन का निर्देश भी करता है। यह युग जीवन को बदलने का वस्त्र भी बन जाता है। भूषण का काव्य अपने युग जीवन के तत्त्वों से ग्रथित है। राष्ट्रीय काव्य में युग का यथार्थ होता है। भूषण के काव्य में युग के यथार्थ का चित्रण हुआ है। शुक्ल जी लिखते हैं भूषण के वीर रस के उद्गार सारी जनता के हृदय के सम्पत्ति हुए। भूषण की कविता कवि-कीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्ति तब तक बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी। शुक्ल जी की यह पंक्तियाँ अप्रस्तुत रूप से भूषण की राष्ट्रीय भावना को स्वीकार करती हैं।

भूषण ने अपने नायक शिवाजी के माध्यम से अपने युग की सामूहिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया है। साथ ही परम्परित सांस्कृतिक, मानव मूल्यों में आस्था प्रकट की है। इसमें उन्होंने शिवाजी के उदात्त रूपको व्यक्त किया है और यह अभिव्यक्ति अत्यन्त ओजमय भाषा में की है।

(ड) कुछ स्थलों की व्याख्या

1. ऊँचे घोर नगन जड़ाती हैं।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्य रीतिकाल वीरकाव्य परंपरा के कवि भूषण विचरति है। इसमें कवि ने शत्रु परिवारों में छाये हुए शिवाजी के आतंक का अत्यन्त चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है। शिवाजी के पराक्रम से भयभीत मुगल बेगमों की दीन-दशा का यह वर्णन कवि की अद्वितीय काव्य प्रतिभा का परिचायक है।

व्याख्या- कवि कहता है— हे शिवाजी! तुम्हारे शौर्य से आतंकित मुगल-स्त्रियों की दशा अत्यन्त ही दयनीय हो गई है। ऊँचे विशाल महलों में रहने वाली जो बेगमों, अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों का भोग लगाती थीं, आज वे जड़ें और जमीन के अन्दर होने वाले पदार्थों का ही भोजन कर पाती हैं। महलों में रहते हुए वे जहाँ तीन-चार बार भोजन करती थीं। आज वे बेरी के तीन बेर खाकर ही दिन बिता देती हैं। पहले तो उनके शरीर अत्यधिक आभूषण से शिथिल-से हो जाते थे लेकिन आज उनकी शिथिलता का कारण है—उनकी भूख। हर प्रकार ऐश्वर्य सामग्री से सम्पन्न महलों में जहाँ दास-दासियाँ उन पर पंखे झुलाया करते थे किंतु अब वे स्वयं ही जंगल में इधर-उधर मारी फिर रही हैं। महलों में वे अपने आभूषणों में नग जड़ाकर अपना प्रसाधन किया करती थीं लेकिन अब वे वस्त्रों के अभाव में जाड़े में ठिठुरती हुई भटक रही हैं।

भाव यह है कि शिवाजी की शक्ति से अत्यन्त भयाकुल मुगल बेगमों महल छोड़कर अपनी रक्षा के लिए जंगलों में अनेक कष्टों को सहती हुई इधर-उधर भटक रही हैं।

विशेष- प्रस्तुत छन्द के प्रत्येक चरण में 'यमक' अलंकार स्पष्ट है। एक साथ इतने वाक्यांशों की समान आवृत्ति में भी दो विरोधी अर्थों की सृष्टि करके कवि ने अपने उक्ति वैचित्र्य और भाषाधिकार का सुष्ठु परिचय दिया है।

2. कूरम कमाल सिवराज है।

प्रसंग- प्रस्तुत छन्द रीतिकालीन वीर रस के कवि भूषण द्वारा रचित है।

संदर्भ- औरंगजेब ने अपनी क्रूरता और कूटनीति से अन्य सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था और उनसे वह नियमित कर लेता था, किन्तु शिवाजी के पास आने की उसमें हिम्मत नहीं थी। इस ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने आलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया है—

व्याख्या- औरंगजेब रूपी भँवरे के लिए कूर्मवंशी राजपूत (जयपुर-नरेश) कमल के फूल की भाँति और कबंभजवंश के राजा (जोधपुर-नरेश) कदम्ब के फूल की तरह सहजता से प्राप्त हो गए हैं। अर्थात् जिस प्रकार भँवरे को कमल और कदम्ब के फूल के रस लेने में कोई कठिनाई नहीं होती उसी प्रकार औरंगजेब को भी इन राजाओं को अपने अधीन कर लेने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। इसी प्रकार गौरवंशीय क्षत्रिय गुलाब-पुष्प के समान हैं और उदयपुर के राणा केतकी-पुष्प के तुल्य हैं। भँवरा जब गुलाब के पास जाता है तो उसे कुछ काँटों का सामना करना पड़ता है और केतकी के फूल के आसपास तो बहुत अधिक काँटे होते हैं अतः उनकी चुभन को सहकर ही वह उस पुष्प के पास पहुँच सकता है। इसी प्रकार औरंगजेब को गौर वंश के क्षत्रियों को परास्त करने में कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा लेकिन उदयपुर के राजाओं में विजय पाने के लिए उसे बहुत मेहनत करनी पड़ी।

पँवार-वंशी क्षत्रिया कुंद के समान, चंदावत जूही फूल के समान, बुन्देला क्षत्रिय चमेली के फूल के समान, गूजर-क्षत्रिय मुचकुन्द-पुष्प की तरह और बघेले क्षत्रिय भी वसन्त में विकसित होने वाले फूलों की तरह है जिनका रस औरंगजेब रूपी भँवरा सरलता से ले सकता है। किन्तु, शिवाजी रूपी चंपा-पुष्प पर यह भँवरा नहीं बैठ सकता क्योंकि वह चंपा की तीव्र सुगन्ध को सह नहीं सकता है। अतः शिवाजी के प्रचण्ड प्रताप के कारण औरंगजेब उन्हें जीतने की तो बात ही क्या, उनके पास तक नहीं आ सकता है।

विशेष-सम्पूर्ण पद्य में 'रूपक' अलंकार है। अनेक फूलों (अप्रस्तुत) के वर्णन से विभिन्न राजाओं (प्रस्तुत) का संकेत होने से 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार का भी सुन्दर योग हुआ है। इस चमत्कार-प्रदर्शन के पद्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत महत्व है। इसके द्वारा औरंगजेब की साम्राज्यवादी नीति एवं शिवाजी के शौर्य का भी आभास मिलता है।

3. सबन के ऊपर ही मुख पीयरे।

प्रसंग- रीतिकालीन वीर काव्य-परम्परा के प्रमुख कवि भूषण द्वारा विरचित प्रस्तुत पद्य में औरंगजेब शिवाजी की भेंट का चित्र प्रस्तुत किया गया है। औरंगजेब ने शिवाजी को अपने दरबार में आमंत्रित कर अपने दुर्व्यवाहक द्वारा उनका निरादर किया। जिसकी प्रतिक्रिया वीर शिवाजी पर कैसी हुई इसका अत्यन्त स्वाभाविक सजीव व प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत पद्य में कवि ने किया है। शिवाजी के क्रोध से तमतमाए मुख को देखकर औरंगजेब तथा उसके सैनिकों की क्या दशा थी : प्रस्तुत पद्य में यह अवेक्षणीय है। प्रस्तुत प्रसंग ऐतिहासिक प्रसंग माना जाता है।

जो शिवाजी औरंगजेब के दरबार में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी थे, उन्हें औरंगजेब ने छः हजारी मन-सूबेदारों की पंक्ति में खड़ा रख कर उनका अपमान किया और इस प्रकार उनके प्रति अपने मानसिक भाव को अभिव्यक्त कर दिया। इस कार्य को न्याय-विरुद्ध एवं अनुचित जानकर शिवाजी अत्यन्त क्रोधित हो गए। उन्होंने आवेश में औरंगजेब को न अभिवादन किया गया तथा न ही शिष्टाचारवश शीतल वचन कहे। इस प्रकार बादशाह को अभिवादन करने की दरबार की मर्यादा का उल्लंघन कर शिवाजी ने औरंगजेब को न केवल अपने मानसिक क्रोध से अवगत करवा दिया वरन् अपने वीर रूप से भी परिचित करवा दिया। शत्रु के दरबार में चारों ओर से शत्रु से घिरे हुए, अपनी सुरक्षा को खतरे में डालकर, शत्रु (वह भी बादशाह) की मर्यादा की उपेक्षा एक साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता, निर्भीक तथा परमवीर शिवाजी ही ऐसे समर्थ है। भूषण कवि कहते हैं महावीर छत्रपति शिवाजी को क्रोध आ गया उनके तमतमाये रूप को देखकर स्वयं बादशाह तथा उसके दरबारी दंग रह गए। उनके प्राण सूख गए। वे अत्यन्त भयभीत हो गए। शत्रु की सीमा में होते हुए भी शिवाजी का चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था जिसे देखकर औरंगजेब का मुख अपमान के कारण काला हो गया तथा सैनिकों के मुख भय के कारण पीले पड़ गए।

औरंगजेब के अपमान-जनक व्यवहार को देखकर नायक शिवाजी का क्रोधित होना स्वाभाविक है। शिवाजी एक राजा होने के नाते भेंट के समय बादशाह से समान स्तर के व्यवहार के प्रत्याशी थे। बादशाह द्वारा किया गया अनुचित व्यवहार उनकी प्रतिष्ठा के विपरीत था। परमवीर शिवाजी इस अपमान को कैसे सह सकते थे। कवि ने नायक का रौद्र रूप अत्यंत स्वाभाविक रीति से अंकित किया है। क्रोध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे दबाया नहीं जा सकता तथा उसकी प्रतिक्रिया तत्काल होती है। शिवाजी को भी तत्काल क्रोध आ गया तथा बादशाह की ओर से उचित सम्मान न पाकर स्वाभिमान का भाव जागा।

उन्होंने भी नियमतः सम्मानार्थ बादशाह को अभिवादन नहीं किया तथा न ही शिष्टाचार वश कुछ मधुर वचन कहे। यहाँ शिवाजी का अत्यन्त निर्भीक रूप भी प्रकट हुआ है जो वीर व्यक्ति का एक लक्षण है। उनकी प्रतिक्रिया दरबार की स्तब्धता एवं शिवाजी औरंगजेब एवं अन्य दरबारियों तथा सैनिकों के मुख के भावों को कवि ने बड़े कौशल से व्यक्त किया है।

टिप्पणी

1. प्रस्तुत पद्य में रौद्र रस (शिवाजी के संदर्भ में) तथा भयानक रस (औरंगजेब तथा दरबारियों के संदर्भ में) स्पष्ट हैं। रौद्र रस के प्रभाव के रूप में आतंक का चित्रण हुआ है।
 2. कवि ने शिवाजी के क्रोध एवं शत्रुओं के भय को चमत्कार द्वारा व्यक्त किया है। क्रोध में मुख का रंग लाल हो जाता है। अपमान की अनुभूति होने पर मुख का रंग काला पड़ जाता है। यह काला रंग उस व्यक्ति के मुख का होता है जो अपने अपमान का प्रतिशोध न ले सके। औरंगजेब शिवाजी के क्रोध के सम्मुख अपमानित अनुभव करते हुए भी प्रतिशोध लेने में असमर्थ है अतः उसका मुख स्याह हो जाता है। भय से मुख पीला पड़ जाता है। औरंगजेब के सिपाहियों के रंग पीले पड़ जाते हैं। इस प्रकार एक ही वाक्य में तीन रंग दिखाकर कवि ने चमत्कार उत्पन्न किया है।
 3. इस पद्य में शब्द प्रयोग का सौन्दर्य दर्शनीय है। 'जी उड़ना', 'मुँह काला पड़ना', 'पीला पड़ना', आदि मुहावरों के सार्थक प्रयोग से लाक्षणिकता का समावेश हुआ है।
 4. अन्तिम चरण में 'विषम अलंकार' है। 'लाल मुख सिवा' रूप कारण से 'स्याह मुख नव रंग' आदि विरुद्ध कार्य है। अतः तीसरा 'विषय' अलंकार है।
 5. "बलकन लाग्यो" अत्यन्त चित्रात्मक प्रयोग है।
 6. इस पद्य में भाव-पक्ष एवं कला पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है।
 7. छः हजार-बादशाह के दरबार में सरदारों का स्थान उनकी घुड़सवार सेना की संख्या पर आधारित था। इसी से जिस सरदार को पाँच हजार घुड़सवार सेना रखने की अनुमति होती थी वह 'पंच हजारी' कहलाता था और छः घुड़सवारों को स्वामी 'छः हजारी'।
4. **साजि चतुरंग हो हलत है।**

भूषण वीर रस के प्रमुख कवि हैं। अपनी ओजपूर्ण शैली में उन्होंने रीतिकालीन साहित्य में वीर रस की धारा प्रवाहित की है। प्रस्तुत छंद शिवा-बावनी का है। शिवाजी की युद्ध-यात्रा का वर्णन कवि ने अत्यन्त सजीव एवं उमंगपूर्ण किया है। शिवाजी के युद्ध प्रयाण करते ही चारों ओर किस प्रकार उत्तेजनापूर्ण वातावरण छा जाता है। इसका अत्यन्त सजीव चित्रण कवि ने प्रस्तुत पद्य में किया है।

वीर-शिरोमणि शिवाजी जब उत्साहपूर्वक चतुरंगिनी (पैदल, घुड़सवार, हाथी, रथ) सेनाओं को सजाकर अश्वारूढ़ होकर, युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए प्रस्थान करते हैं तो नगाड़ों के भयंकर स्वर से बड़े गर्वधारियों का अथवा मतवाले श्रेष्ठ हाथियों का (गैबरन) मद नदी-नालों के प्रवाह सा बहने लगता है। शिवाजी की सेना के चारों ओर फैलने से संसार की गली-गली में खलबली सी मच जाती है और गजों की धक्कम धक्के से पर्वत तक उखड़ जाते हैं। इस विशाल सेना के चलने से जो धूल उड़ती है वह आकाश पर छा जाती है जिसमें ढका हुआ सूर्य तारे के समान निस्तेज तथा बहुत छोटा दिखाई देता है तथा

सेना की हलचल के कारण पृथ्वी के काँपने से सागर ऐसे हिलता दिखाई देता है जैसे थाली में रखा हुआ पारा हिलता है।

शिवाजी के युद्धार्थ प्रयाण का चित्रण अत्यन्त चित्रोपम शैली में हुआ है। शब्दालंकार व अर्थालंकार के सौन्दर्य से युक्त प्रस्तुत पद सेना के प्रयाण के प्रभाव को दर्शाता है। ओजपूर्ण शैली से युक्त छन्द नगाड़ों की गर्जन तथा प्रयाण करती हुई चतुरंगिनी सेना के कारण उड़ती हुई धूल का चित्रण बहुत प्रभावशाली ढंग से साकार करता है। अत्युक्ति होने पर भी सेना के प्रभाव को प्रकट करने में कवि का उपमान सार्थक है। सेना के प्रस्थान के समय प्रकाश इतना धूल-धूसरित हो गया कि सूर्य तारे के समान दिखाई देने लगा और पृथ्वी ऐसे डगमगाने लगी कि थाली पर रखे पारे के समान सागर हिलने लगा। इस प्रकार यहाँ उपमा अलंकार के माध्यम से धूल धूसरित आकाश तथा समुद्र के थराने की सजीवता निखर उठी है।

छेकानुप्रास की छटा स्थान-स्थान पर दर्शनीय है। तीसरे चौथे चरणों में अन्तिमाक्षर के रूप में 'द' की आवृत्ति तथा पाँचवे छठे चरणों में 'ल' की आवृत्ति वृत्त्यनुप्रास का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

खलक अरबी शब्द है। खैल-मैल देशज है। प्रस्तुत पद्य में ओज गुण व्याप्त है।

व्याख्येय मुख्य अंश

शिवा बावनी के 52 छन्दों में से कुछ छन्द परीक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वैसे अध्ययन तो सभी छन्दों का करना अपेक्षित है। आवश्यक छन्द निम्नलिखित हैं -

छन्द संख्या- 1, 2, 3, 4, 6, 7, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 18, 21, 22, 23, 28, 31, 33, 36, 37, 40, 41, 47, 50, 51,

संदर्भ-ग्रंथ

- | | |
|--|------------------------------|
| 1. भूषण | डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र |
| 2. भूषण और उनका साहित्य | डॉ. राजमल बोरा |
| 3. भूषण | डॉ. भगवान दास तिवारी |
| 4. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक | डॉ. त्रिभुवन सिंह |
| 5. हिन्दी साहित्य का अतीत (द्वितीय खण्ड) | डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र |
| 6. रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या | डॉ. राजेन्द्र प्रताप सिंह |
| 7. भूषण ग्रंथावली | मिश्रबन्धु |
| 8. भूषण ग्रंथावली | बाबू ब्रजरत्न दास |
| 9. भूषण ग्रंथावली | टीकाकार पं. राज नारायण शर्मा |
| 10. भूषण विमर्श | पं. भगीरथ प्रसाद दीक्षित |

संभावित प्रश्न

1. वीरकाव्य-परम्परा में भूषण का स्थान निर्धारित कीजिए।
2. 'रीतिकालीन वीरकाव्य-परम्परा और भूषण' इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. भूषण (शिवा बावनी) का प्रतिपाद्य : एक निबंध लिखिए।

4. शिवा-बावनी के काव्य-सौष्ठ पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. भूषण के काव्य-शिल्प पर प्रकाश डालिए।
6. भूषण को राष्ट्रीय कवि मानना कहाँ तक उचित है? युक्ति युक्त मत दीजिए।
7. 'भूषण के काव्य में युग के यथार्थ चित्रण हुआ है' राष्ट्रीय काव्य की दृष्टि से इस काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
8. भूषण के काव्य को जातीय काव्य की संज्ञा देना कहाँ तक उचित होगा? युक्ति युक्त मत दीजिए।
9. 'भूषण का काव्य भारत की प्राचीन संस्कृति, विशेष रूप से हिन्दू संस्कृति के संरक्षक का प्रशस्ति काव्य है।' भूषण के साहित्य का परिचय देते हुए इस तथ्य की परीक्षा कीजिए।